Notes

MA- Political Science

SEMESTER -I

Western Political Thought -I

Course Code- 24POL201DS01

Unit- I

प्लेटो

प्लेटो का शिक्षा सिद्धांत

प्लेटो के शिक्षा सिद्धांत का मुख्य उद्देश्य — व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना है तथा योग्य व्यक्ति में दार्शनिक गुणों को विकसित करना है। प्लेटो का शिक्षा सिद्धांत कुछ इस प्रकार है—

प्लेटो ने शिक्षा को निम्नलिखित दो व्यापक अवस्थाओं में विभक्त किया है-

1. प्रारम्भिक शिक्षा (Elementary Education)-प्रारम्भिक शिक्षा 20 वर्ष तक की आयु तक चलने वाली है। प्रारम्भिक शिक्षा का **प्रथम चरण** छः वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए है। इस अवस्था में बच्चों को ऐसी बातों की शिक्षा दी जानी चाहिए, जिसमें कि वे सैद्धान्तिक सत्य का ज्ञान प्राप्त कर सकें। इस अवस्था में बच्चों को धार्मिक एवं नैतिक सत्य की शिक्षा दी जानी चाहिए और उनमें अच्छी आदतें तथा अभिरुचियाँ उत्पन्न की जानी चाहिएँ।

प्रारम्भिक शिक्षा का **दूसरा चरण** सात वर्ष से 18 वर्ष तक की आयु के लिए है। इस अवस्था वाले शिक्षा के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत बच्चों के शारीरिक तथा मानसिक विकास को सुनिश्चत करने वाले विषय शामिल किए जाने चाहिए। यह शिक्षा मुख्य रूप से भावनाओं के माध्यम से चरित्र-निर्माण की शिक्षा है और इसका उद्देश्य उत्साह के गुण तथा ऐसी भावनाओं को विकसित करना है, जो राष्ट्र के लिए उत्तम सैनिक तैयार कर सके। इस अवस्था में प्लेटो व्यायाम-शास्त्र (Gymanstic) तथा संगीत (Music) के विषयों के अध्ययन पर बल देता है। व्यायाम-शास्त्र विद्यार्थी के शारीरिक विकास के लिए और संगीत उसके मानसिक विकास के लिए है।

यहाँ व्यायाम से प्लेटो का अभिप्रायः केवल शारीरिक कसरत से नहीं है, बल्कि शरीर को स्वस्थ रखने वाले चिकित्साशास्त्र और आहारशास्त्र को भी वह इसमें शामिल करता है। शारीरिक शिक्षण के द्वारा वह व्यक्ति - के शरीर को इतना सुदृढ़ बनाना चाहता है कि वह बीमार न हो। उसके राज्य में चिकित्सकों के लिए कोई स्थान नहीं है, क्योंकि ये रोग का निदान करने के स्थान पर उसे बढ़ाते ही हैं। उसका मत है कि बीमारियाँ आलस्य और विलासिता के कारण पैदा होती हैं। इसीलिए शारीरिक शिक्षण का उद्देश्य शरीर को स्वस्थ एवं सुदृढ़ बनाना है। साथ ही यह व्यक्ति में साहस, उत्साह और वीरता के मानसिक गुण भी विकसित करता है।

शारीरिक विकास के साथ-साथ विद्यार्थी का मानसिक विकास भी जरूरी है। इसके लिए प्लेटो इस आयु-वर्ग के विद्यार्थियों के लिए संगीत की शिक्षा पर बल देता है। यहाँ संगीत से प्लेटो का अभिप्रायः केवल गाने की विद्या से नहीं है, बल्कि वह काव्य, साहित्य, गीत, नृत्य, चित्र आदि सभी ललित कलाओं को इसमें सम्मिलित करता है।

प्लेटो के मतानुसार **प्रारम्भिक शिक्षा का तृतीय चरण 18 से 20 वर्ष** की आयु तक होगा। इस अवधि में विद्यार्थियों को निरपेक्ष रूप से व्यायाम और सैनिक शिक्षा दी जाएगी, जिससे कि वे अच्छे सैनिक बन सकें। 20 वर्ष की आयु में प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त युवकों की एक बौद्धिक एवं क्रियात्मक परीक्षा होगी। इस परीक्षा को उत्तीर्ण करने वाले युवक ही उच्च शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे। जो युवक इसमें अनुत्तीर्ण रहेंगे, वे सैनिक व उत्पादक वर्गों के कार्यों में लगा दिए जाएंगे। यह परीक्षा एकदम निष्पक्ष तरीके से की जाएगी और इसमें कुल व धन आदि का कोई विचार नहीं होगा।

2. उच्च शिक्षा (Higher Education)-प्रारम्भिक शिक्षा की तरह, उच्च शिक्षा भी स्त्री और पुरुष दोनों के लिए ही होगी। उच्च शिक्षा के दो चरण होंगे **प्रथम स्तर 20 से 30 वर्ष** की आयु तक रहेगा और **द्वितीय स्तर 30 से 35 वर्ष तक की आयु तक।** प्रथम चरण में क्रमिक वैज्ञानिक शिक्षा दिए जाने की व्यवस्था की गई है। इस चरण के पाठ्यक्रम में गणित, भूमितिशास्त्र (Geometry), ज्योतिष (Astronomy), द्वन्द्वशास्त्र (Dialectics) और दर्शनशास्त्र विषयों को सम्मिलित किया गया है। गणित, जो यूनानियों का प्रिय विषय रहा है, का उच्च शिक्षा में प्रमुख स्थान है। प्लेटो इस विषय को दर्शनशास्त्र की प्रथम सीढ़ी

मानता है। उसके अनुसार 'विशुद्ध सत्य की प्राप्ति में विशुद्ध बुद्धि का प्रयोग गणित' से सीखा जा सकता है। इसीलिए प्लेटो की अकादमी के प्रवेश-द्वार पर यह वाक्य लिखा था कि, "गणित का ज्ञान रखने वाले व्यक्ति ही इसमें प्रवेश के अधिकारी हैं।"

तीस वर्ष आयु तक उच्च शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् शासकों (Guardians) की एक अन्य परीक्षा होगी। जो विद्यार्थी इस परीक्षा में कम कुशल सिद्ध होंगे, उन्हें राज्य के निम्नतर प्रशासनिक पदों पर नियुक्त किया जाएगा। इस परीक्षा में सफल शिक्षार्थी ही पूर्ण संरक्षक बन सकेंगे और उन्हें 35 वर्ष की आयु तक प्रशिक्षित किया जाएगा। इन्हें दर्शनशास्त्र का अध्ययन कराया जाएगा। इसी के माध्यम से ये परम सत् के विचार (Idea of Good) तक पहुँच सकेंगे। 35 वर्ष की आयु तक शिक्षित किए जाने के बाद भी प्लेटो शासकों की शिक्षा को अधूरा मानता है, क्योंकि इन्होंने अब तक केवल बौद्धिक ज्ञान ही प्राप्त किया है; इन्हें संसार का वह व्यावहारिक ज्ञान अभी भी प्राप्त नहीं हुआ है, जो एक सफल शासक के लिए आवश्यक है। अतः वह इन बुद्धिजीवी दार्शनिक शासकों के लिए अगले 15 वर्ष संसार के व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए निर्धारित करता है। इस प्रकार 50 वर्ष की आयु तक सांसारिक जीवन की कठोर परीक्षा में सफल होने वाले दार्शनिक ही शासन करने के योग्य समझे गए हैं।

शिक्षा-पद्धति की विशेषताएँ (Features of the Education System)-प्लेटो ने शिक्षा की जिस विस्तृत योजना का वर्णन अपने ग्रन्थ रिपब्लिक में किया है, उसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. यह शिक्षा-पद्धति मनोवैज्ञानिक आधार पर निर्धारित की गई है। आयु बढ़ने के साथ जैसे-जैसे व्यक्ति की अभिरुचियाँ बदलती हैं, उन्हीं के अनुरूप पाठ्यक्रम और विषयों का निर्धारण किया गया है।

2. इसमें व्यक्ति के शरीर और आत्मा दोनों के विकास पर समान बल दिया गया है। इस प्रकार यह पूर्ण शिक्षा-पद्धति है। यहाँ तक कि शासकों के बौद्धिक एवं व्यावहारिक दोनों प्रकार के प्रशिक्षण के लिए 15-15 वर्ष निर्धारित किए गए हैं।

3. शिक्षा का उद्देश्य राज्य के लिए उत्तम नागरिक तैयार करना है, जिससे कि वे राज्य के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वाह कर सकें।

4. इस शिक्षा-पद्धति व्यक्ति को इस प्रकार की शिक्षा देना है, जिससे कि उसके और राज्य के मध्य पूर्ण सामंजस्य कायम हो सके।

5. इस शिक्षा-पद्धति में एथेन्स और स्पार्टा की शिक्षा-पद्धतियों को इस प्रकार मिश्रत किया गया है कि दोनों के दोषों से बचते हुए, इनके गुणों को लेकर चला जा सके।

6. उसकी शिक्षा-व्यवस्था केवल दो वर्गों-शासक और सैनिक के लिए है; उत्पादक वर्ग के लिए नहीं है।

आलोचनाः (Criticism)- यद्यपि प्लेटो की शिक्षा पद्धति बड़ी तर्कसंगत प्रतीत होती है, तो भी इसमें निम्नलिखित कई गम्भीर दोष हैं:-

1. उत्पादक वर्ग की उपेक्षा (Neglect of Productive Class)-प्लेटो की शिक्षा-पद्धति का एक प्रमुख दोष यह है कि इसमें बहुसंख्यक उत्पादक-वर्ग की उपेक्षा की गई है, क्योंकि उसने शिक्षा की जो व्यवस्था की है, वह शासक और सैनिक वर्ग के लिए ही है। एक ओर वह इस वर्ग के प्रतिभाशाली बच्चों को उच्च वर्ग में पदोन्नत करने की बात करता है, और दूसरी ओर वह इस वर्ग के बच्चों को शिक्षा के लाभ से वंचित कर देता है। ऐसी स्थिति में उनकी पदोन्नति कैसे होगी? वस्तुतः वह 'श्रमिकों की कुलीनतान्त्रिक घृणा का दोषी' है। इस दृष्टि से, उसकी शिक्षा-पद्धति उसके न्याय के उस सिद्धान्त से मेल नहीं खाती, जिसका आधार व्यक्ति द्वारा अपनी योग्यता या प्रतिभा के अनुसार कार्य करने से है।

2. पाठ्यक्रम के निर्धारण में कठोरता (Rigidity in Determination of Syllabus)-प्लेटो ने विद्यार्थियों के लिए जिन विषयों के अध्ययन का निर्धारण किया है, उसमें उसकी आत्मनिष्ठता व पूर्वाग्रह स्पष्ट नजर आते हैं। प्लेटो ने गणित के अध्ययन पर आवश्यकता से अधिक बल दिया है, जब कि काव्य, नाटक, आदि विषयों को उसने पाठ्यक्रम से बाहर कर दिया है। इस

प्रकार उसने मानव-आत्मा के विकास में केवल विवेक तत्त्व की भूमिका को ही स्वीकारा है और भावनाओं की सर्वथा उपेक्षा की है। इस प्रकार वह इस मनोवैज्ञानिक तत्त्व को भूल जाता है कि मानव की आत्मा के विकास में भावनाओं की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसके, अतिरिक्त, उसके द्वारा गणित और द्वन्द्वशास्त्र की शिक्षा पर अत्यधिक बल देने से केवल दार्शनिक ही पैदा होंगे, न कि क्रियाशील शासक ।

3. दीर्घकालीन शिक्षा-पद्धति (Long-term Education System)-प्लेटो की शिक्षा-पद्धति का एक प्रमुख दोष है-इसका आवश्यकता से अधिक लम्बा होना। 35 वर्ष की आयु तक चलने वाली यह शिक्षा-पद्धति बड़ी खर्चीली है। इतनी लम्बी अवधि तक शिक्षा ग्रहण करने का साहस बहुत ही कम व्यक्ति कर सकते हैं। इतना ही नहीं, 35 वर्ष तक बौद्धिक शिक्षा ग्रहण करने वाले दार्शनिकों के लिए वह और 15 वर्ष के लिए सांसारिक शिक्षा की व्यवस्था कर देता है। इस प्रकार वह शिक्षा-पद्धति को 50 वर्ष तक की अवस्था तक घसीट देता है।

4. शिक्षा पर राज्य का नियन्त्रण (Control of State over Education)- प्लेटो की शिक्षा-पद्धति का एक दोष यह भी है कि इसको पूर्णतया राज्य के अधीन कर दिया गया है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि शिक्षा का स्वरूप वैसा ही होगा, जैसा कि राज्य चाहेगा। स्पष्ट है कि इससे व्यक्ति के व्यक्तित्त्व और चेतना के स्वतन्त्र विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाएगा। वस्तुतः वह व्यक्ति के स्वतंत्र विकास पर कोई बल नहीं देता है, बल्कि राज्य के हितों के लिए वह इसे बलिदान कर देता है। वह राज्य के एक अंग के रूप में ही व्यक्ति की शिक्षा का प्रबन्ध करता है।

5. व्यावहारिकता का अभाव (Lack of Pragmatism)-प्लेटो जिस प्रकार के शिक्षा-पाठयक्रम की व्यवस्था करता है, उससे तो उच्च कोटि के दार्शनिकों का ही जन्म होगा, कुशल शासकों का नहीं। ऐसे दार्शनिक सदैव अमूर्त विषयों के चिन्तन में ही उलझे रहेंगे और कोई ठोस निर्णय नहीं ले पाएँगे। वैसे भी, इतनी अधिक आयु तक शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् उनमें नवीन कार्य करने की भावना और उत्साह का लोप हो जाएगा।

निष्कर्ष (Conclusion)-प्लेटो की शिक्षा-पद्धति उपर्युक्त दोषों के बावजूद भी आधुनिक शिक्षा- शास्त्रियों को शिक्षा-पद्धतियों के निर्माण-नियमन व उद्देश्य निर्धारण करने के लिए पर्याप्त सामग्री प्रदान करती है। शिक्षा का उद्देश्य शारीरिक और मानसिक विकास निर्धारित करना प्लेटो की एक महान् देन है। इसके अतिरिक्त, शिक्षा को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करना भी उसकी एक महान् देन है। साथ ही उसका यह कहना भी सत्य है कि शासन प्रणाली में आए दोषों को उचित शिक्षा द्वारा ही दूर किया जा सकता है। अतः प्लेटो की इस शिक्षा पद्धति के विषय के बार्कर का यह कथन सही प्रतीत होता है कि "यह मानसिक रोग का मानसिक औषधि द्वारा उपचार है।"

प्लेटो का न्याय सिद्धान्त

प्रश्न — प्लेटो के न्याय के सिद्धान्त का मूल्यांकन कीजिए। (Evaluate Plato's theory of Justice.)

अथवा

प्लेटो के न्याय की संकल्पना की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए। (Critically examine Plato's concept of justice.)

उत्तर- प्लेटो ने राजनीति पर अनेक पुस्तकें लिखी हैं। 'रिपब्लिक' (Republic) पुस्तक इनमें सबसे प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण रचना है। इस पुस्तक का प्रारम्भ और अन्त न्याय के स्वरूप की मीमांसा के साथ होता है। इस पुस्तक को प्लेटो ने 40 वर्ष की अवस्था में अपने विचार परिपक्व और प्रौढ़ होने पर लिखा है। 'इस ग्रन्थ का दूसरा नाम 'न्याय विषयक' (Concerning Justice) है। स्पष्ट है कि प्लेटो ने अपनी इस सर्वोत्तम कृति में न्याय के सिद्धान्त की व्यापक विवेचना की है। यह ग्रन्थ संवाद-शैली में लिखा गया है। इस ग्रन्थ के संवाद 'न्याय' शब्द के विवेचन से प्रारम्भ होते हैं।

इस संवाद के पात्र **सुकरात, थ्रैसीमेक्स, सिफेलस, पोली मार्क्स आदि** हैं। वाद-विवाद, 'न्याय' शब्द को लेकर प्रारम्भ किया जाता है। न्याय के सम्बन्ध में जो विभिन्न दृष्टिकोण या सिद्धान्त विभिन्न पात्रों द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं, उन सभी का एक-एक करके खण्डन किया जाता है और अन्त में जो निष्कर्ष निकाला जाता है, वह प्लेटो के न्याय' के सिद्धान्त का रूप धारणा कर लेता है। प्लेटो से पहले यूनान में न्याय के सम्बन्ध में मुख्य रूप से तीन सिद्धान्त प्रचलित थे। प्लेटो न्याय का अपना सिद्धान्त प्रतिपादित करने से पूर्व विभिन्न पात्रों के माध्यम से इन तीनों सिद्धान्तों को अभिव्यक्त कराता है; प्रश्नोत्तर द्वारा तर्क-वितर्क प्रस्तुत करके इनका खण्डन कराता है और अन्त में इनसे सर्वथा पृथक् न्याय का अपना सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्लेटो ने न्याय के सिद्धान्त की व्याख्या करने के लिऐ नकारात्मक पद्धति का सहारा लिया है। दूसरों शब्दों में, न्याय विषयक अपना सिद्धान्त प्रस्तुत करने से पहले वह यह स्पष्ट करता है कि न्याय क्या नहीं है।

अपना न्याय का सिद्धान्त प्रस्तुत करने से पहले वह न्याय के विषय में प्रचलित तीनों सिद्धान्तों का खण्डन करता है। **ये तीनों सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-**

1. न्याय का परम्परावादी सिद्धान्त (Traditional Theory of Justice)-इस धारणा को व्यक्त करते हुए सिफेलस कहता है कि न्याय का अर्थ 'सत्य बोलना और ऋण चुकाना' है, किन्तु प्लेटो सुकरात से कहलाता है कि यह परिभाषा दोषपूर्ण है, क्योंकि ये दोनों कार्य कभी न्याय और तो कभी अन्याय भी हो सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति अपने स्वस्थ-चित्त मित्र से शस्त्र ले लेता है और बाद में शस्त्र देने वाला मित्र पागल हो जाता है और वह अपने शस्त्र वापिस माँगतां, तो क्या ऐसी अवस्था में शस्त्र वापिस लौटाना न्याय नहीं होगा। इसके पश्चात् सिफेलस का बेटा पोलीमार्क्स इसमें थोड़ा संशोधन करते हुए कहता है कि "**प्रत्येक व्यक्ति को उसका उचित (अंश) देना ही न्याय है।",** किन्तु यह 'उचित' क्या है? कुछ वाद-विवाद के बाद यह अर्थ निकाला जाता है कि **'मित्र के प्रति भलाई और शत्रु के प्रति बुराई करने की कला (Art) न्याय है।'** प्लेटो सुकरात से इसका भी खण्डन कराता है।

प्लेटो ने इस सिद्धान्त की निम्न कमियां बताई हैं-

(i) दूसरों का बुरा करना न्याय नहीं हो सकता।

(ii) यह सिद्धान्त नैतिकता के विरुद्ध है।

(iii) यदि मित्र शत्रु बन जाए तो क्या होगा।

(iv) न्याय व्यक्तिगत नहीं, सामाजिक होता है।

(v) न्याय रचनात्मक होता है, दण्डात्मक नहीं।

(vi) न्याय बदला लेना नहीं अपितु दायित्व निभाना है। (vii) मित्र और शत्रु की पहचान करना आसान नहीं है।

(viii) इससे व्यक्ति में कोई सुधार नहीं होता।

2. क्रान्तिकारी सिद्धान्त (Radical Theory) - न्याय के क्रान्तिकारी सिद्धान्त का प्रतिपादन थ्रेसीमेकस करता है। उसके अनुसार न्याय 'शक्तिशाली का हित' (Interest of the Stronger) है। उसका तर्क है कि -शक्तिशाली व्यक्ति अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए जो कानून या व्यवस्था बनाता है, वही न्याय है। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का सिद्धान्त जगत में प्रत्यक्ष दिखायी देता है, क्योंकि सभी शासक अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए कानून बनाते हैं और जनता को इन कानूनों का अनुसरण करना होता है। इस आधार पर शक्तिशाली लोग ही समाज में शासक बन जाते हैं और उन्हीं के आदेश एवं हित सामाजिक और राजनीतिक न्याय का रूप धारण कर लेते हैं।

प्लेटो ने इस सिद्धान्त में निम्न दोष बताए हैं-

(i) यह न्याय का नहीं, अन्याय का सिद्धान्त है।

(ii) शासन एक कला है और कला अपने प्रशंसकों का भला करती है।

(iii) न्याय व्यक्तिगत नहीं, सामाजिक है।

(iv) न्याय मनमानी करने में नहीं बल्कि आत्म संयम में निहित होता है। (v) व्यक्तिगत शक्ति से राज्य और समाज की शक्ति अधिक होती है।

3. व्यावहारवादी सिद्धान्त (Pragmatic Theory)- न्याय के व्यावहारवादी सिद्धान्त का प्रतिपादन **ग्लौकोन** करता है। वह **न्याय को 'दुर्बल के हित'** के रूप में प्रतिपादित करता है। उसकी मान्यता है कि प्रारम्भिक समाज में ने तो सरकार थी और न ही कानून। इस अवस्था में बहुसंख्यक दुर्बल व्यक्ति शक्तिशाली व्यक्तियों के आचरण से पीड़ित थे। इस स्थिति से दुखी होकर दुर्बल व्यक्तियों ने आपस में एक समझौता किया और इसके माध्यम से सरकार और कानून स्थापित किए और इस प्रकार एक नियन्त्रित और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना हुई। इस प्रकार, ग्लौकान यह सिद्ध करता है कि न्याय की अवधारणा का जन्म उस समझौते से हुआ, जो दुर्बल व्यक्तियों ने समाज की प्रारम्भिक अवस्था में किया। ग्लौकोन का तात्पर्य है कि न्याय कृत्रिम, संविदा का परिणाम और 'भय की उपज' है।

प्लेटो ने बताया कि न्याय कृत्रिम नहीं है बल्कि प्राकृतिक है। ग्लूकॉन के इस विचार से भी वह सहमत नहीं है कि न्याय भय का परिणाम है। प्लेटो ने इस सिद्धान्त में निम्न कमियां बताई हैं-

(i) न्याय बाहरी नहीं, आंतरिक है।

(ii) न्याय किसी संयोग का परिणाम नहीं है।

(iii) न्याय स्वाभाविक है, कृत्रिम नहीं।

(iv) न्याय सार्वभौमिक है, वर्ग विशेष के हित में नहीं।

(v) न्याय कानूनों में निहित नहीं क्योंकि कानून अस्थाई होते हैं जबकि न्याय स्थाई होता है। उपरोक्त न्याय के सिद्धान्तों की आलोचना करने के बाद प्लेटो ने अपने न्याय के सिद्धान्त की व्याख्या की है।

प्लेटो का न्याय का सिद्धान्त (Plato's Theory of Justice) — ***प्लेटो के अनुसार न्याय मानव की आत्मा का एक आन्तरिक सद्गुण (Virtue) है।*** किसी व्यक्ति में सद्गुण की विशेषता ही उसे इन्सान बनाती है और उत्तमता प्रदान करती है। यह मानवीय सद्गुण उसके व्यवसायिक सद्गुण से सर्वथा भिन्न होता है। कोई व्यक्ति एक उत्तम कारीगर हो सकता है, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह एक उत्तम इन्सान भी हो। इस प्रकार मानवीय सद्गुण ही किसी व्यक्ति को श्रेष्ठता प्रदान करता है। प्लेटो के मतानुसार मानवीय सद्गुण चार तत्त्वों से युक्त होते हैं- (i) बुद्धि या विवेक (Reason), (ii) साहस या उत्साह (Spirit) (iii) तृष्णा या क्षुधा (Appetite) और (iv) न्याय (Justice)। उसका कहना है कि एक उत्तम या पूर्ण व्यक्ति में ये चारों तत्त्व होने चाहिए। विभिन्न व्यक्तियों में विवेक, उत्साह और तृष्णा के तत्त्वों में से किसी एक तत्त्व की प्रमुखता होती है, किन्तु न्याय वह तत्त्व है, जो व्यक्ति को यह प्रेरणा देता है कि उसे वैसा ही जीवन-क्रम अपनाना चाहिए, जिसके लिए उसमें उपयुक्त तीन तत्त्वों में से प्रमुख तत्त्व विद्यमान् है।

जिस प्रकार **मानवीय आत्मा का निर्माण तीन तत्त्वों-विवेक, साहस और तृष्णा-से** होता है, उसी प्रकार राज्य का निर्माण भी इन तीन तत्त्वों से होता है। इन तीन तत्त्वों को तीन अलग-अलग वर्ग अभिव्यक्त करते, हैं। कुछ व्यक्तियों में विवेक की प्रधानता होती है, तो कुछ में साहस की और कुछ अन्य में तृष्णा की। जिनमें विवेक (बुद्धि) की प्रधानता होती है, वे शासक वर्ग का निर्माण करते हैं और जिनमें साहस की प्रधानता होती है, वे सैनिक वर्ग का निर्माण करते हैं और जिन व्यक्तियों में तृष्णा (क्षुधा) की प्रधानता होती है, वे उत्पादक वर्ग का निर्माण करते हैं। इस प्रकार प्लेटो के अनुसार राज्य में तीन तत्त्वों-विवेक, साहस और क्षुधा की प्रधानता लिए हुए क्रमशः तीन वर्ग-शासक, सैनिक और उत्पादक होते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्लेटो समाज को तीन गुणों के आधार पर तीन वर्गों में विभाजित करता है-शासक, सैनिक और उत्पादक वर्ग।

प्लेटो न्याय के सिद्धान्त को प्रतिपादित करते हुए कहता है कि अपने गुण के आधार पर तीनों वर्गों द्वारा अपने निर्धारित स्थान में अपने कर्त्तव्यों का पालन करना और दूसरों के कर्त्तव्यों में हस्तक्षेप न करना ही न्याय है।

इस प्रकार न्याय का निवास-स्थान अपना कर्त्तव्य पूरा करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के मन में है। दूसरे शब्दों में, यदि प्रत्येक वर्ग का व्यक्ति अपना निर्धारित कार्य करे और दूसरों के कार्य में हस्तक्षेप न करे, तो यही न्याय है और एक ऐसा राज्य, जहाँ न्याय विद्यमान् हो, ही एक सर्वोत्तम या आदर्श राज्य होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि **प्लेटो के अनुसार न्याय के दो रूप हैं- वैयक्तिक और सामाजिक।** वैयक्तिक न्याय मानवीय आत्मा में मौजूद तीनों सद्गुणों-विवेक, साहस और तृष्णा में समन्वय एवं सन्तुलन बनाए रखना है, जब कि सामाजिक न्याय से उसका तात्पर्य समाज के तीनों वर्गों शासक, सैनिक और उत्पादक द्वारा अपना निर्धारित कार्य करते हुए समाज में सामंजस्य व एकता बनाए रखने से है।

विशेषताएँ (Characteristics)-उपर्युक्त वर्णित प्लेटो के न्याय के सिद्धान्त की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:-

1. कार्यों का विशेषीकरण (Specialization of Functions)-प्लेटो ने अपने न्याय के सिद्धान्त में कार्यों के विशेषीकरण पर बल दिया है। एक आदर्श राज्य में न्याय स्थापित करने के लिए वह यह आवश्यक समझता है कि व्यक्तियों द्वारा कार्यों का निष्पादन उनमें निहित योग्यता के आधार पर किया जाना चाहिए। इसके लिए वह समाज को तीन वर्गों-शासक (संरक्षक), सैनिक और उत्पादक में विभक्त करता है और इनके कार्य क्रमशः शासन करना, राज्य की सुरक्षा करना और भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उत्पादन करना निर्धारित करता है।

2. सामाजिक सामंजस्य व एकता पर बल (Emphasis on Social Co-operation and Unity)-प्लेटो के न्याय के सिद्धान्त का उद्देश्य सामाजिक सामंजस्य एवं एकता स्थापित करना है। उसने यह स्पष्ट किया है कि तीनों वर्गों के व्यक्ति केवल उन्हीं कार्यों को करें, जो उनके गुण अथवा योग्यता द्वारा निर्धारित हैं और ये कार्य उन्हें सम्पूर्ण समाज के लिए करने हैं। उदाहरण के लिए उत्पादक वर्ग सम्पूर्ण समाज के लिए उत्पादन करें; न कि सिर्फ स्वयं के लिए। इसके साथ ही ये वर्ग किसी दूसरे वर्ग के कार्यों में हस्तक्षेप भी नहीं करेंगे, अतः इससे समाज में किसी भी प्रकार की प्रतियोगिता एवं तनाव का जन्म नहीं होगा।

3. मनोविज्ञान पर आधारित (Based on Human Psychology)-प्लेटो का न्याय का सिद्धान्त मनोविज्ञान पर आधारित है। । उसका कहना कि मानवीय आत्मा में तीन तत्त्व या गुण होते हैं-विवेक, साहस और तृष्णा । प्रत्येक मनुष्य को अपनी आत्मा में निहित उस गुण के अनुरूप ही कार्य करना चाहिए, जो उसमें निहित है। उसके अनुसार यदि मनुष्य स्वयं में निहित गुण के अनुसार कार्य करता है और दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करता है, तो यही सच्चा न्याय है। ऐसा करने से एक ओर जहाँ समाज में एकता बनी रहेगी, तो दूसरी ओर व्यक्ति मनोवैज्ञानिक आधार पर सन्तुष्ट भी रहेगा।

4. न्याय राज्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गुण (Justice Most Important Virtue of State)-प्लेटो के अनुसार राज्य के चार प्रमुख सद्गुण होते हैं-विवेक, साहस, तृष्णा और न्याय। उसके अनुसार प्रथम तीन सद्गुणों के तालमेल और सामंजस्य से चौथे सद्गुण की उत्पत्ति होती है और जिस राज्य में यह चौथा सद्गुण विद्यमान् होता है, वही सर्वोत्तम या आदर्श राज्य होता है।

5. कर्त्तव्यों पर बल (Emphasis on Duties)-न्याय के अपने इस सिद्धान्त में प्लेटो ने व्यक्ति के कर्तव्यों पर ही बल दिया है; अधिकारों पर नहीं। उसके अनुसार राज्य में न्याय की स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने अन्दर निहित गुण या योग्यता अनुसार ही कार्य करना चाहिए और दूसरे व्यक्ति के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक व्यक्ति को केवल उसी कार्य को सम्पन्न करना चाहिए, जिसके करने के लिए प्रकृति ने उसे योग्यता प्रदान की है। प्लेटो के न्याय के सिद्धान्त का अभिप्रायः ही यह है कि व्यक्ति अपने निर्धारित कर्तव्यों को पूरा करे अर्थात् राज्य के सम्बन्ध में न्याय

का अर्थ है "नागरिकों में कर्त्तव्यों की भावना का होना।" यह भावना ही मनुष्य को सामाजिक बनाती है और मनुष्य अपने पृथक् व्यक्तिगत अस्तित्त्व की अपेक्षा स्वयं को समाज का एक आवश्यक एवं अभिन्न अंग मानता है।

6. न्याय के दो पक्ष (Two Aspects of Justice)-प्लेटो ने न्याय के अपने सिद्धान्त में इसके दो पक्षों-वैयक्तिक और सामाजिक-पर बल दिया है। उसके अनुसार न्याय का सम्बन्ध व्यक्ति एवं राज्य दोनों से है। उसके मतानुसार व्यक्ति द्वारा अपनी आत्मा में निहित तीनों सद्गुणों- विवेक, साहस और तृष्णा (क्षुधा)- में सामंजस्य करना ही न्याय है। इसी प्रकार राज्य द्वारा समाज के तीनों वर्गों द्वारा निर्धारित कर्तव्यों का पालन कराना और उनमें सामंजस्य एवं एकता स्थापित करना ही न्याय है। उसके अनुसार न्याय व्यक्ति एवं राज्य दोनों का सद्गुण है और इस नाते यह दोनों में व्याप्त होना चाहिए।

7. शिक्षा एवं साम्यवाद न्याय के साधन (Education and Communism: Means of Justice)-प्लेटो न केवल न्याय की अवधारणा को स्पष्ट करता है, बल्कि यह भी स्पष्ट करता है कि न्याय किस प्रकार से स्थापित किया जा सकता है। इसके लिए वह शिक्षा और साम्यवाद की व्यवस्था करता है। सेबाइन ने इसकी स्थापना के लिए दो उपाय बताए हैं-या तो उत्तम नागरिकता के मार्ग की बाधाओं को दूर किया जाए अथवा उत्तम नागरिकता के विकास हेतु सकारात्मक परिस्थितियों का सृजन किया जाए। उसके द्वारा प्रतिपादित सम्पत्ति तथा परिवार के साम्यवाद का सिद्धान्त, बाधाओं के निराकरण का, जब कि शिक्षा की योजना सकारात्मक परिस्थितियों के सृजन का आयोजन करती है।

7. न्याय का उद्देश्य (Aims of Justice): प्लेटो के न्याय के सिद्धान्त का उद्देश्य आदर्श राज्य की स्थापना करना है। न्याय के द्वारा प्लेटो एथेन्स सहित यूनान के नगर राज्यों की समस्याओं को दूर करना चाहता था।

9. नैतिकता पर आधारित (Based on Morality): प्लेटो का न्याय आधुनिक युग के न्याय के समान कानून पर आधारित नहीं अपितु नैतिकता पर आधारित है। न्याय व्यक्ति के बाह्य आचरण से नहीं अपितु उसकी आत्मा का एक भाग है जो उसे नैतिक प्राणी बनने की प्रेरणा देता है।

10. कर्तव्यों पर आधारित (Based on duties): प्लेटो न्याय को बलवान अथवा कमजोर का अधिकार नहीं मानता। न्याय के द्वारा व्यक्ति को अधिकार प्राप्त नहीं होते अपितु न्याय व्यक्ति को स्वयं तथा समाज के अन्य वर्गों के प्रति दायित्व निभाने के लिए प्रेरित करता है।

13. नकारात्मक पद्धति का प्रयोग (Use of negative methodology): प्लेटो ने न्याय के अपने सिद्धान्त को स्थापित करने के लिए नकारात्मक पद्धति का प्रयोग किया है। प्लेटो ने अपने न्याय के सिद्धान्त को व्यक्त करने से पूर्व अपने पूर्ववर्ती विचारकों के न्याय सम्बन्धी विचारों की कमियां बताई हैं।

आलोचना (Criticism)-प्लेटो के न्याय सिद्धान्त की आलोचना निम्नलिखित आधारों पर की जा सकती है-

1. न्याय केवल भावनात्मक (Only Emotional Justice)-बार्कर के मतानुसार प्लेटो के न्याय के सिद्धान्त का सबसे बड़ा दोष यह है कि यह व्यक्ति की एक भावना मात्र है; इससे अधिक कुछ नहीं। उसके शब्दों में, "प्लेटो का न्याय वस्तुतः न्याय नहीं है; वह मनुष्यों को अपने कर्तव्यों तक सीमित करने वाली एक भावना मात्र है; कोई ठोस कानून नहीं है।" वस्तुतः न्याय कानून का पालन कराने वाला होता है, किन्तु प्लेटो का न्याय नैतिक भावना के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

2. कर्त्तव्यों पर अधिक बल (More Emphasis on Duties)-प्लेटो के न्याय के इस सिद्धान्त में व्यक्ति के कर्त्तव्यों पर ही बल दिया गया है और उसके अधिकारों की उपेक्षा की गई है। उसका न्याय से अभिप्रायः यही है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने अन्तर्निहित गुणों अथवा योग्यता के अनुसार कार्य करना चाहिए। वह समाज को एक ऐसे सावयव (Organism) या शरीर के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसका व्यक्ति एक अभिन्न अंग है और वह अपना निर्धारित कार्य करता है।

3. मानवीय विकास के विरुद्ध (Against Human Development)-प्लेटो के न्याय के सिद्धान्त का एक अन्य दोष यह है कि यह मानवीय विकास के विरुद्ध है, क्योंकि इसमें व्यक्ति को केवल एक ही कार्य करने तक सीमित कर दिया गया है। व्यक्ति में विविध प्रकार की योग्यताएं होती हैं और इन्हीं के अनुसार वह कार्य करता है। व्यक्ति द्वारा केवल एक कार्य के निष्पादन पर

बल देने से उसकी अन्य योग्यताओं का विकास उपेक्षित रह सकता है।

4. निरंकुशतंत्र का समर्थन (Supporter of Absolutism)-प्लेटो का न्याय का सिद्धान्त निरंकुशतंत्र को बढ़ावा देता है। इसके अन्तर्गत यह सम्भव है कि विवेक का शासन सत्ताधारी वर्ग की तानाशाही में बदल जाए, क्योंकि वह इस वर्ग पर कोई व्यवहारिक प्रतिबन्ध नहीं लगाता है। यहाँ प्लेटो ने इस मनोवैज्ञानिक तत्त्व की उपेक्षा की है कि शक्ति मनुष्य को मदान्ध बना देती है। वस्तुतः जिस प्रकार के सत्ताधारी वर्ग की कल्पना वह करता है, ऐसा वर्ग अपने हितों को सार्वजनिक हितों में समीकृत करने और जन-हित की उपेक्षा करने लगेगा।

5. विरोधाभासी सिद्धान्त (Paradoxical Theory)-प्लेटो के न्याय के इस सिद्धान्त में एक विरोधाभास स्पष्ट नजर जाता है। एक ओर वह इस सिद्धान्त के माध्यम से समाज में एकता कायम करना चाहता है और दूसरी ओर वह समाज को तीन वर्गों में विभाजित कर देता है। वह यह स्पष्ट नहीं कर पाया कि एक वर्ग-विभाजित समाज में एकता कैसे कायम की जा सकती है।

6. फासीवादी राज्य की स्थापना (Establishment of Fascist-State)-प्लेटो का न्याय का सिद्धान्त एक फासीवादी राज्य की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करता है, क्योंकि ऐसे राज्य में व्यक्तियों के कार्यों का निर्धारण राज्य के द्वारा किया जाएगा। व्यक्ति को अपने कार्य के निर्धारण के अधिकार से वंचित करना और यह अधिकार राज्य को सौंपना एक फासीवादी राज्य में ही सम्भव हो सकता है।

7. न्याय वस्तुनिष्ठ नहीं (Justice is not objective): प्लेटो का न्याय वस्तुनिष्ठ और पक्षपातहीन नहीं है। प्लेटो ने ऐसे किसी संगठन की स्थापना पर बल नहीं दिया है जिसके माध्यम से न्याय के सिद्धान्तों की स्थापना और व्याख्या की जा सके। उसने व्यक्तिगत न्याय व्यक्तियों पर और सामाजिक न्याय शासक वर्ग पर छोड़ दिया है जिससे न्याय की निष्पक्षता और वस्तुनिष्ठता समाप्त होने का खतरा बना रहता है।

8. सर्वांगीण विकास की कमी (Lack of all round development): प्लेटो के न्याय के सिद्धान्त को मानव मनोविज्ञान पर आधारित बताया जाता है। लेकिन वास्तव में प्लेटो को मानव मनोविज्ञान की पूर्ण जानकारी नहीं थी इसलिए उसने प्रत्येक व्यक्ति को एक ही कार्य करने के लिए कहा है, व्यक्ति में एक साथ एक से अधिक कार्य करने की योग्यता है जिससे उसका सर्वांगीण विकास होता है। प्लेटो ने अन्य कायों की मनाही करके व्यक्ति के सर्वांगीण विकास को रोक दिया है।

9. दार्शनिक राजा की तानाशाही (Dictatorship of philosopher king) : प्लेटो ने न्याय के सिद्धान्त में सम्पूर्ण राजनैतिक शक्ति दार्शनिक राजा को प्रदान करके न केवल लोकतंत्र का विरोध किया है बल्कि उसने दार्शनिक राजा की तानाशाही भी स्थापित कर दी है। दार्शनिक राजा की शक्ति पर किसी प्रकार का कोई अंकुश भी प्लेटो ने नहीं लगाया है क्योंकि उसने अन्य वर्गों को एक दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप करने से मना किया है।

6. विरोधाभास (Paradoxes): प्लेटो ने अपने न्याय के सिद्धान्त के माध्यम से समाज में एकता की स्थापना का उद्देश्य निर्धारित किया है लेकिन दूसरी तरफ प्लेटो ने समाज में तीन वर्ग अलग-अलग स्थापित करके समाज को तीन स्पष्ट वगों में बांट दिया है। इस प्रकार से तीन स्पष्ट रूप से अलग वर्ग समाज में कैसे एकता स्थापित कर पाएंगे। इस विरोधाभास को प्लेटो ने स्पष्ट नहीं किया है।

10. समाज का विभाजन (Division of Society): प्लेटो का न्याय का सिद्धान्त सामाजिक एकता की अपेक्षा सामाजिक विभाजन का सिद्धान्त है और इस प्रकार से समाज को तीन वर्गों में बांटकर उसका विभाजन कर देता है।

11. व्यक्तित्व का विभाजन (Division of personality): प्लेटो का न्याय का सिद्धान्त व्यक्ति को एक आगिक इकाई नहीं मानता। वह उसके व्यक्तित्व को समाज के समान ही तीन भागों में विभक्त कर देता है। व्यक्ति न केवल शारीरिक रूप से एक है अपितु मनोवैज्ञानिक रूप से भी उसका एक व्यक्तित्व है जिसे टुकड़ों में विभाजित नहीं किया जा सकता।

12. व्यक्तिगत स्वतंत्रता के विरुद्ध (Against individual liberty): प्लेटो का न्याय का सिद्धान्त व्यक्ति को किसी प्रकार की स्वतंत्रता प्रदान नहीं करता। वह नागरिकों के द्वारा राज्य के कार्यों में भाग लेने, अपनी इच्छा से कार्य करने पर रोक लगाता है।

प्लेटो का संपत्ति एवं पत्नियों का साम्यवाद

प्रश्न — इस मत का विवेचन कीजिए कि प्लेटो राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में प्रथम साम्यवादी थे। (Examine the view that Plato was the first Communist in the history of Political Thought.)

अथवा

प्लेटो के साम्यवाद के सिद्धान्त की विवेचना कीजिए। क्या प्लेटो इतिहास में प्रथम साम्यवादी ये? (Discuss Plato's theory of Communism. Was Plato the first Communist in History?)

अथवा

प्लेटो के साम्यवाद का वर्णन करो।

(Explain Plato's theory of Communism.)

उत्तर- प्लेटो ने अपने ग्रन्थ 'रिपब्लिक' में आदर्श राज्य में न्याय स्थापित करने के लिए शिक्षा-व्यवस्था के साथ-साथ स्त्रियों एवं सम्पत्ति के साम्यवाद की एक नवीन सामाजिक व्यवस्था को अपनाने पर बल दिया है।

इस सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत शासक (संरक्षक) वर्ग तथा सैनिक वर्ग को सामान्य हित की दृष्टि से व्यक्तिगत सम्पत्ति (Personal Property) और परिवार से वंचित किया गया है। उसका यह विश्वास है कि यदि इन दोनों वर्गों के पास व्यक्तिगत सम्पत्ति और परिवार होगा, तो ये कंचन और कामिनी के मोह में फंस जाएँगे। अर्थात् धन की कामना व पारिवारिक कार्यों में आसक्ति इनके कर्तव्य पालन में बाधा बनकर खड़ी हो जाएगी। ये इनके प्रलोभन में पड़ जाएँगे और अपने सार्वजनिक दायित्वों की उपेक्षा करने लगेंगे। इसी कारण वह सम्पत्ति और परिवार के साम्यवाद की सिफारिश करता है। उल्लेखनीय है कि प्लेटो ने यह व्यवस्था सम्पूर्ण समाज के लिए लागू नहीं की है। उसने तृष्णा अथवा क्षुधा (Appetite) तत्त्व का प्रतिनिधित्व करने वाले उत्पादक वर्ग को इस व्यवस्था से मुक्त रखा है अर्थात् इस वर्ग को व्यक्तिगत सम्पत्ति और परिवार से वचित नहीं रखा गया है, बल्कि यह वर्ग इनको बनाए रख सकता है।

प्लेटो के अनुसार मनुष्य की आत्मा में तीन तत्त्वों-विवेक (Reason), साहस (Spirit) और तृष्णा (Appetite) का मिश्रण होता है। किसी व्यक्ति में विवेक की प्रधानता होती है; किसी में साहस की और किसी में तृष्णा की। इन तत्त्वों की प्रधानता के आधार पर वह समाज को तीन वर्गों-शासक, सैनिक और उत्पादक- में विभक्त करता है और इनको क्रमानुसार शासन करने, राज्य की सुरक्षा करने और राज्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के दायित्व सौंपता है। उसके अनुसार यही न्याय है। न्याय को कायम करने के लिए यह आवश्यक है कि किसी एक तत्त्व का प्रतिनिधित्व करने वाले वर्ग में अन्य वर्गों के तत्त्व नहीं आने चाहिए। दूसरे शब्दों में, प्लेटो विवेक और साहस का प्रतिनिधित्व करने वाले, शासक और सैनिक वर्गों को तृष्णा तत्त्व से दूर रखने के लिए उन्हें सम्पत्ति तथा परिवार से वंचित रखता है।

(क) सम्पत्ति का साम्यवाद (Communism of property): प्लेटो अपने सम्पत्ति सम्बन्धी साम्यवाद के लिए मानव की प्राकृतिक अवस्था से प्रभावित हुआ है। प्राकृतिक अवस्था में कोई राज्य नहीं था और राज्य के अभाव में सामाजिक मान्यता प्राप्त स्थाई व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं थी। सम्पत्ति का प्रयोग सामूहिक रूप से किया जाता था तथा इसी को आधार मानते हुए प्लेटो ने संरक्षक वर्ग के लिए सम्पत्ति के साम्यवाद का सिद्धान्त दिया है जिसके अन्तर्गत उसने संरक्षक वर्ग पर सम्पत्ति के प्रयोग पर किसी प्रकार की रोक नहीं लगाई है, परन्तु उन्हें व्यक्तिगत स्वामित्व के अधिकार से वंचित कर दिया है। प्लेटो ने स्पष्ट रूप से कहा है कि संरक्षक वर्ग की कोई सम्पत्ति नहीं होनी चाहिए। सम्पत्ति में प्लेटो ने घर, भूमि, सोना और चांदी को शामिल किया है। प्लेटो का मानना है कि सम्पत्ति की चाह में संरक्षक वर्ग अपने दायित्वों से विमुख होकर स्वार्थी बन सकता है, तथा इससे राज्य की एकता को खतरा उत्पन्न हो सकता है। इसके साथ-साथ संरक्षक वर्ग का स्वार्थी होना न्याय के मार्ग में रुकावट उत्पन्न कर सकता है।

बार्कर ने प्लेटो के साम्यवाद की विवेचना करते हुए कहा है कि "यह सम्पूर्ण समाज के कल्याण के लिए है लेकिन पूरे समाज पर लागू नहीं होता। यह केवल संरक्षक वर्ग (शासक एवं सैनिक) के लिए है। इस संदर्भ में प्लेटो द्वारा स्थापित साम्यवाद का स्वरूप आर्थिक नहीं, राजनीतिक है।"

सम्पत्ति के साम्यवाद के आधार (Basis of the Communism of Property)

प्लेटो ने निम्न आधारों पर सम्पत्ति के साम्यवाद की वकालत की है-

1. नैतिक आधार (Ethical Basis): प्लेटो के दर्शन का मूल उद्देश्य आदर्श राज्य की स्थापना है और आदर्श राज्य की स्थापना के लिए नैतिक और आदर्शवादी संरक्षक वर्ग की आवश्यकता होती है। संरक्षक वर्ग के पास इतनी अधिक शक्तियां होती हैं कि यदि इन पर व्यापक अंकुश न लगाया जाए तो वे स्वार्थी हो सकते हैं। उन्हें स्वार्थी होने से रोकने के लिए उनमें उच्च नैतिक आदर्शों की स्थापना के लिए उन्हें धन के मोह से दूर रखना अत्यन्त आवश्यक है।

2. मनोवैज्ञानिक आधार (Psychological Basis): प्लेटो का सम्पूर्ण दर्शन मानवीय मनोविज्ञान से अछूता नहीं है। प्लेटो ने आत्मा के तीन तत्वों विवेक, साहस और इच्छाओं के आधार पर समाज के तीन वर्गों शासक, सैनिक और उत्पादक वर्ग की स्थापना पर बल दिया है। शासक और सैनिक वर्ग से यह अपेक्षा की जाती है कि उनमें क्रमशः विवेक और साहस अधिक मात्रा में हो और वे अपनी भौतिक इच्छाओं की प्रवृत्ति पर काबू करने में सक्षम हों। प्लेटो ने इन्हीं वर्गों से साम्यवाद की अपेक्षा की है।

3. राजनैतिक आधार (Political Basis): प्लेटो का साम्यवाद आर्थिक न होकर पूर्ण रूप से राजनैतिक है। इसका मूल उद्देश्य उत्पादन और वितरण के साधनों का वितरण करना नहीं अपितु संरक्षक वर्ग के स्वार्थों और भ्रष्टाचारों पर रोक लगाना है। इस साम्यवाद में पूर्ण जनता को शामिल नहीं किया गया है। इसका उद्देश्य केवल इतना है कि संरक्षक वर्ग सम्पति की चाह में अपने कार्यों को न भूल जाए। शासक और सैनिक वर्ग में सम्पत्ति की चाह राज्य में कार्यों को बुरी तरह से प्रभावित करती है।

4. दार्शनिक आधार (Philosophical Basis): प्लेटो ने आदर्श राज्य के लिए दार्शनिक राजा को प्राथमिकता दी है। दार्शनिक राजा को वह बुद्धि और विवेक से परिपूर्ण मानता है और उससे विशेष कार्यों की अपेक्षा करता है। इसलिए यह आवश्यक है कि उसकी बुद्धि और विवेक को सुरक्षित रखा जाए। यह तभी सम्भव है जब दार्शनिक राजा धन, सम्पत्ति और सांसारिक मोह से दूर रहे।

पत्नियों के साम्यवाद के आधार (Bases of Communism of Wives)-अपने आदर्श राज्य में प्लेटो ने शासकों और सैनिकों को न केवल सम्पत्ति के, बल्कि परिवार के अधिकार से भी वंचित किया है। जिस प्रकार वह सम्पत्ति पर इन दोनों वर्गों के संयुक्त स्वामित्व की व्यवस्था करता है, उसी प्रकार वह पत्नियों पर भी इनके संयुक्त स्वामित्व की व्यवस्था करता है। उसका कहना है कि सम्पत्ति की तरह परिवार का मोह भी व्यक्ति को पथ-भ्रष्ट कर देता है और वह राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों को भूल जाता है। प्लेटो ने इस सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए कहा है कि शासक व सैनिक वर्ग में शामिल कोई भी व्यक्ति अपना निजी घर नहीं बनाएगा; स्त्रियों सभी की समान रूप से पत्नियों होंगी तथा इनसे उत्पन्न सन्तानें भी सभी की समान रूप से सन्तानें होंगी और न तो माता-पिता अपनी सन्तान को जान पाएँगे और न ही सन्तान अपने माता-पिता को। अपने इस सिद्धान्त का प्लेटो निम्नलिखित आधारों पर समर्थन करता है-

1. परिवार के घातक प्रभाव से मुक्ति (Immunity from the Evil Effect of Family)-प्लेटो परिवार को स्वार्थी भावानाओं तथा संकीर्ण मनोवृत्तियों को जन्म देने वाली संस्था मानता है। उसने नारा दिया कि "घरों की दीवारें ध्वस्त कर दो तवा खुली हवा का संचार होने दो।" उसकी धारणा है कि परिवार का माया-मोह एवं ममता अनेक प्रकार के कलह उत्पन्न करती है और राज्य में अशान्ति को जन्म देते हुए राज्य की एकता को हानि पहुंचाती है। वह कहता है कि मनुष्य की पारिवारिक चिन्ताएँ उसे कर्तव्य-विमुख कर देती हैं, अतः परिवार की संस्था को समाप्त कर देना चाहिए। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वह इसे समूल नष्ट करना चाहता है। वस्तुतः यह संकीर्ण परिवार-व्यवस्था का उन्मूलन करके इसकी जगह सम्पूर्ण समाज को ही एक विशाल परिवार का रूप देना चाहता है।

2. स्त्रियों की मुक्ति व उनके समानाधिकार (Emancipation of Women and Their Equal Rights)-प्लेटो के समय

एथेन्स में स्त्रियों की दशा शोचनीय थी। वे घर की चार-दीवारी के अन्दर कैद रहती थीं और उनका जीवन चूल्हे-चौके तक ही सीमित होकर रह गया था। वह पत्नियों के साम्यवाद की इस व्यवस्था के माध्यम से उन्हें घर की चार-दीवारी से बाहर निकालकर उनकी प्रतिभा का विकास करना चाहता है और उनका सार्वजनिक जीवन में प्रवेश कराना चाहता है। उसकी धारणा है कि स्त्रियाँ शारीरिक बल की दृष्टि से भले ही पुरुषों से कम हों, लकिन बुद्धि और प्रतिभा के आधार पर ये पुरुषों से विल्कुल भी कम नहीं हैं। उसके अनुसार स्त्री और पुरुष में ऐसा कोई भेद ही नहीं है, जिसके कारण स्त्रियों सार्वजनिक जीवन में भाग न ले सकें। वस्तुतः वह स्त्रियों को पारिवारिक बन्धनों से मुक्त करके राज्य की सेवा में लगाना चाहता है।

3. उत्तम सन्तान की उत्पत्ति (Reproduction of Best Progeny)-प्लेटो पत्नियों के साम्यवाद की व्यवस्था उत्तम सन्तान उत्पन्न करने की दृष्टि से भी करता है। उसका कहना है कि जिस प्रकार उत्तम नस्ल के घरेलू जानवर प्राप्त करने के लिए उत्तम गुणों से युक्त नर व मादा जानवरों का समागम आवश्यक है, उसी प्रकार उत्तम किस्म के बच्चों के जन्म के लिए श्रेष्ठ नर-नारी का समागम कराना आवश्यक है और इसके लिए कुछ विशेष अवसरों पर ही, समागम या सहवास की व्यवस्था होनी चाहिए; किन्तु सन्तान उत्पन्न होने के बाद माता-पिता का सन्तान से कोई सम्बन्ध नहीं रहना चाहिए। उसके मतानुसार ऐसे बच्चों का पालन-पोषण राजकीय शिशु-गृहों में होगा। इन बच्चों का पालन-पोषण करने वाले पदाधिकारी इस बात का समुचित उपाय करेंगे कि माता-पिता अपने बच्चों को न पहचानें। प्लेटो की धारणा है कि इस व्यवस्था से न केवल उत्तम संतान उत्पन्न होगी, बल्कि सम्पूर्ण राज्य एक विशाल परिवार का रूप भी धारण कर लेगा।

साम्यवाद की विशेषताएँ (Features of Communism) - उपर्युक्त वर्णित प्लेटो के साम्यवाद की निम्नलिखित विशेषताएँ है:-

1. मौलिकता (Originality): प्लेटो का साम्यवाद का सिद्धान्त एक मौलिक सिद्धान्त है। इसका अभिप्राय यह है कि वह अपने अन्य सिद्धान्तों और विचारों के लिए अपने गुरु सुकरात सहित अन्य विचारकों का ऋणी है। लेकिन उसका साम्यवाद का सिद्धान्त उसकी स्वयं की कल्पना-शक्ति की देन है और इस प्रकार यह एक मौलिक सिद्धान्त है।

2. सभी वर्गों के लिए नहीं (Not applicable to all classes): प्लेटो का साम्यवाद का सिद्धान्त सीमित है। इसका अभिप्राय यह है कि यह सिद्धान्त राज्य के सभी वर्गों पर समान रूप से लागू न होकर सीमित है और राज्य के अल्पसंख्यक वर्गों पर ही लागू होता है इसमें शासक और सैनिक वर्ग शामिल हैं।

3. आदर्श और नैतिकता पर आधारित (Based on idealism and morality) : प्लेटो का साम्यवाद का सिद्धान्त आदर्श और नैतिकता पर आधारित सिद्धान्त है। मानव मनोविज्ञान के आधार पर शासक वर्ग जिन कारणों से स्वार्थी और भ्रष्ट होता है, उन कारणों को इस सिद्धान्त के माध्यम से दूर करके शासक और सैनिक वर्ग में आदर्श और नैतिकता का संचार करता है।

4. सम्पत्ति एवं परिवार से सम्बन्धित (Related with family and property) : प्लेटो ने साम्यवाद के सिद्धान्त में दो तत्वों को शामिल किया है। प्लेटो के ये दो तत्व- सम्पत्ति और परिवार हैं। साम्यवाद के सिद्धान्त का अध्ययन करने के लिए इसी कारण से उसे दो भागों में बांटा जाता है। एक सम्पत्ति का साम्यवाद और दूसरा परिवार या पत्नियों का साम्यवाद।

5. राजनीति सिद्धान्त न कि आर्थिक (Political theory not economic): प्लेटो का साम्यवाद आर्थिक सिद्धान्त न होकर एक प्रकार का राजनैतिक सिद्धान्त है। इसमें आर्थिक साधनों के उचित विभाजन पर बल न देकर संरक्षक वर्ग के नैतिक उत्थान पर बल दिया गया है।

6. आत्न-नियंत्रण (Self-Control): प्लेटो का साम्यवाद का सिद्धान्त तपस्यात्मक है जिसमें संरक्षक वर्ग से स्त्री और धन के मोह को छोड़ने का आग्रह किया गया है। यह तभी सम्भव है जब संरक्षक अपनी मनोभावनाओं पर तपस्या के माध्यम से काबू पा ले।

7. आधुनिक साम्यवाद से भिन्न (Different from modern communism): प्लेटो का साम्यवाद का सिद्धान्त आधुनिक साम्यवाद के सिद्धान्त से कुछ बातों में समान है और कुछ में पूरी तरह से अलग है। दोनों में समानता इसको लेकर है कि राज्य को अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। मनुष्य की मौलिक प्रवृत्ति की उपेक्षा की गई है, दोनों में न्यायपूर्ण विवरण पर बल दिया

गया है आदि। लेकिन दोनों में व्यापक असमानताएँ भी हैं, जैसे प्लेटो का साम्यवाद, राजनैतिक और आधुनिक साम्यवाद, आर्थिक है। प्लेटो का साम्यवाद सीमित है और आधुनिक साम्यवाद पूरे समाज पर लागू होता है आदि-आदि।

8. योग्य बच्चे उत्पन्न करने का उद्देश्य (Aim to produce able children): प्लेटो के साम्यवाद का स्वभाव जहाँ स्त्री और पुरुषों में समानता पर बल देता है वहीं राज्य के लिए उत्कृष्ट सन्तान उत्पन्न करने की भी कामना करता है।

9. यौन भावनाओं पर अंकुश (Control on sexual emotions): प्लेटो का साम्यवाद संरक्षक वर्ग की यौन प्रवृत्ति पर भी अंकुश लगाता है और उन्हें नियंत्रित और नियमित करने का प्रयत्न करता है।

10. काल्पनिक सिद्धान्त (Utopian Theory): प्लेटो के साम्यवाद की एक विशेषता यह भी है कि यह एक काल्पनिक सिद्धान्त है जिसे व्यवहार में लागू नहीं किया जा सकता। इतिहास में कहीं भी और कभी भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता जब सभ्य मानव ने इस प्रकार के सम्पत्ति और परिवार या पत्नियों के साम्यवाद को अपनाया हो।

आधुनिक साम्यवाद (मार्क्सवाद) व प्लेटो के साम्यवाद में अन्तर (Difference between Modern Communism (Marxism) and Platonic Communism)- इन दोनों के मध्य निम्नलिखित अन्तर हैं-

1. प्लेटो का साम्यवाद राजनीतिक है, क्योंकि उसका उद्देश्य राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर करना हैं, जबकि आधुनिक साम्यवाद या मार्क्सवाद का स्वरूप आर्थिक है। इसका जन्म ही पूँजीवादी व्यवस्था के कारण उत्पन्न आर्थिक विषमता को समाप्त करना और दोषपूर्ण पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त करके इसके स्थान पर समाजवादी व्यवस्था कायम करना है।

2. प्लेटो का साम्यवाद आधा-अधूरा साम्यवाद (Half-communism) है, क्योंकि यह सम्पूर्ण समाज पर लागू न होकर, समाज के दो अल्पसंख्यक वर्गों-शासक और सैनिक पर ही लागू होता है। किन्तु आधुनिक साम्यवाद या मार्क्सवाद सम्पूर्ण समाज पर लागू होता है और राज्य के अन्दर मौजूद सभी उत्पादन के साधन भूमि, खाने तथा कारखाने-इसके दायरें में आ जाते हैं।

3. प्लेटो के साम्यवाद का स्वरूप अभिजातीय (Aristocratic) है, क्योंकि यह समाज के दोनों अभिजात वर्गों पर ही लागू होता है; सम्पूर्ण समाज पर नहीं। इसके विपरीत, आधुनिक साम्यवाद लोकतान्त्रिक है, क्योंकि यह सम्पूर्ण समाज पर लागू होता है; किसी वर्ग-विशेष पर नहीं।

4. प्लेटो का साम्यवाद निषेधात्मक (Negative) है, क्योंकि यह सम्पत्ति को शासन संचालन के कार्य में बाधा मानते हुए, शासक और सैनिक वगों को इससे वंचित कर देता है, किन्तु आधुनिक साम्यवाद सम्पत्ति को महत्त्वपूर्ण उम्तु मानते हुए इसके समान वितरण पर बल देता है। इस दृष्टि से यह भावात्मक (Positive) है।

5. प्लेटो का साम्यवाद न केवल सम्पत्ति पर लागू होता है, बल्कि पत्नियों भी इसके दायरें में रखी गई हैं, किन्तु आधुनिक साम्यवाद अथवा मार्क्सवाद के अन्तर्गत स्त्रियों को अछूता रखा गया है।

6. यद्यपि प्लेटो का साम्यवाद और आधुनिक साम्यवाद दोनों ही समाज में न्याय कायम रखना चाहते हैं, किन्तु दोनों की 'न्याय' की अवधारणा एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न है। जहाँ प्लेटो का 'न्याय' से अभिप्रायः व्यक्तियों द्वारा बिना दूसरों के कार्यों में हस्तक्षेप किए, अपने दायित्वों का निर्वाह करना है, वहीं आधुनिक साम्यवादी न्याय का अर्थ व्यक्ति को उसके परिश्रम के अनुसार पारिश्रमिक देने से, लगाते हैं।

7. प्लेटो का दृष्टिकोण आध्यात्मिक है। यह वर्तमान जगत को मिथ्या मानता है और इसके मूल में विद्यमान् विचारों (Ideas) को ही सत्य मानता है; किन्तु आधुनिक साम्यवादी या मार्क्सवादी भौतिक जगत को ही सत्य मानते हैं और इससे भिन्न किसी आध्यात्मिक या अलौकिक सत्ता के अस्तित्त्व में विश्वास नहीं रखते। ये धर्म को 'अफीम' की संज्ञा देते हैं।

8. आधुनिक साम्यवाद के मौलिक तत्त्वों, जैसे-आर्थिक विषमता का अन्त, उत्पादन के सभी साधनों का राष्ट्रीयकरण और

सम्पत्ति का समान वितरण में से एक भी तत्त्व प्लेटो के साम्यवाद में विद्यमान् नहीं है।

9. प्लेटो का साम्यवाद आदर्शवादी (Ideal) है, क्योंकि यह केवल चिन्तन तक ही सीमित है। एक काल्पनिक सा सिद्धान्त होने के नाते इसे कहीं भी लागू नहीं किया जा सका। इसके विपरीत, आधुनिक साम्यवाद या मार्क्सवाद एक समय एक-तिहाई विश्व में लागू था। आज भी कहीं-कहीं हमें इसके दर्शन हो जाते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्लेटो के साम्यवाद और आधुनिक साम्यवाद में व्यापक अन्तर या भिन्नता मौजूद है।

क्या प्लेटो प्रयम साम्यवादी है? (Is Plato a First Communist)- प्लेटो इतिहास में प्रथम साम्यवादी है या नहीं? यह प्रश्न एक बहुत ही विवादास्पद एवं गूढ़ प्रश्न है। जब हम प्लेटो के साम्यवाद और आधुनिक साम्यवाद या मार्क्सवाद के मध्य मौजूद समानताओं को देखते हैं, तो हम इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में दे सकते हैं। वस्तुतः दोनों ही निजी सम्पत्ति को सभी बुराइयों की जड़ मानते हैं; दोनों ही राज्य को सर्वोपरि संस्था मानते हुए, राज्य के हितों के समक्ष व्यक्ति के हितों को गौण समझते हैं और दोनों ही राज्य में 'न्याय' की स्थापना करना चाहते हैं। इसी आधार पर मैक्सी जैसे ख्याति प्राप्त विद्वान् लिखते हैं, कि "समस्त् समाजवादी तया साम्यवादी चिन्तन का मूल प्लेटो में है।" उसके मतानुसार मार्क्स तथा लेनिन के भौतिकवाद तथा प्लेटो के आदर्शवाद में कोई भेद नहीं है, क्योंकि प्लेटो का चिन्तन भी भौतिक जगत के तथ्यों पर आधारित है। मार्क्स तथा लेनिन की भाँति प्लेटो भी इतिहास के साथ-साथ चला है; उसके विरुद्ध नहीं।

किन्तु जब हम प्लेटो के साम्यवाद और आधुनिक साम्यवाद के मध्य व्याप्त व्यापक अन्तर को देखते हैं, तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्लेटो को प्रथम साम्यवादी विचारक कहकर न पुकारा जाए। वस्तुतः इन दोनों प्रकार के साम्यवादी सिद्धान्तों में मौलिक एवं गुणात्मक अन्तर है, जिसे हम नजरअन्दाज नहीं कर सकते हैं। इसी को ध्यान में रखकर टेलर ने लिखा है, "प्लेटो के ग्रन्थ 'रिपब्लिक' के समाजवाद और साम्यवाद के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जाने के बाद भी इस ग्रन्थ में न तो समाजवाद पाया जाता है और न ही इसमें साम्यवाद मिलता है।"

इस प्रश्न के उत्तर में मैक्सी और टेलर दोनों के विचार बहुत कुछ सीमा तक सही हैं; लेकिन तब भी इन दोनों विद्वानों के मतों को पूर्णतया सत्य नहीं माना जा सकता है। यदि हम प्लेटो के साम्यवाद और आधुनिक साम्यवाद (मार्क्सवाद) के मध्य समानताओं पर विचार करें, तो प्लेटो को प्रथम साम्यवादी कहना गलत न होगा, किन्तु इन दोनों प्रकार के साम्यवादी सिद्धान्तों में निहित विषमताएँ हमें अपने इस निष्कर्ष पर पुनर्विचार करने के लिए विवश कर देती हैं, जिसके परिणामस्वरूप प्रथम साम्यवादी होने का प्लेटो का दावा दुर्बल प्रतीत होने लगता है।

प्लेटो के साम्यवाद की अरस्तू द्वारा आलोचना

(Criticism by Aristotle of Plato's Communism) प्लेटो के शिष्य अरस्तू ने भी प्लेटो के सम्पत्ति और पत्नियों के साम्यवाद की आलोचना की है :

1. साम्यवाद का सिद्धान्त सामाजिक संघर्ष को बढ़ावा देता है।

2. राज्य की एकता के लिए अनेकता का होना अनिवार्य है। साम्यवाद राज्य में अनेकता को नष्ट करता है।

3. सम्पत्ति एक बुराई ही नहीं है, अपितु इसमें अनेक गुण भी हैं।

4. जो चीज एक के लिए बुरी है, वह सभी के लिए समाप्त होनी चाहिए।

5. साम्यवाद का कोई ऐतिहासिक प्रभाव नहीं है।

6. नैतिकता की स्थापना के लिए ये उपचार सही नहीं है।

7. साम्यवाद का सिद्धान्त व्यवहार में लागू करना कठिन है।

8. परिवार राज्य की मूल इकाई है।

9. यह यौनाचार को बढ़ावा देगा।

10. यह स्त्रियों को स्वतंत्रता नहीं अपितु भोग की वस्तु बना देगा।

11. सामाजिक और पारिवारिक सम्बन्धों में गिरावट आयेगी।

12. यह आंशिक साम्यवाद है।

13. यह समाज को प्राकृतिक अवस्था में पुनः वापिस ले जाएगा।

Unit-II

अरस्तू (384 322 ई.पू.)

Aristotle (384-322 B.C.)

अरस्तु का क्रांति का सिद्धांत

अरस्तू के क्रान्ति सम्बन्धी विचारों की व्याख्या कीजिए। (Examine Aristotle's views on Revolution.)

अथवा

"असमानता हर जगह क्रांति का कारण होती है।" इस कथन के प्रकाश में क्रांति के सम्बंध में अरस्तू के विचारों का विवेचन कीजिए ।

("Inequality is the cause of revolution euerywhere." In the light of this statement discuss Aristotle's views on revolution.)

उत्तर- अरस्तू के समय में यूनान के नगर-राज्यों की शासन-व्यवस्था स्थायी नहीं थी, क्योंकि इनकी शासन -व्यवस्था में क्रांन्तियों के माध्यम से परिवर्तन होते रहते थे। अरस्तू ने अपने ग्रन्थ 'राजनीति' (Politics) की पांचवीं पुस्तक में क्रान्तियों का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए इनके कारणों और इनको रोकने के उपायों पर प्रकाश डाला है।

यहाँ उसने अपनी परिपक्व राजनीतिक सूझ-बूझ तथा यूनानी इतिहास के अपने विशद् ज्ञान का परिचय दिया है। वह अपने इस सिद्धान्त के माध्यम से इन नगर-राज्यों की शासन-व्यवस्था को स्थिरता प्रदान करना चाहता है। वह निरंकुश शासक तक को अपनी सत्ता सुरक्षित रखने के उपाय बतलाता है।

यहाँ यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि अरस्तू जिन क्रान्तियों की विवेचना करता है, वे आज जैसी राज्य-क्रांतियों (फ्रांस की क्रान्ति और रूस की क्रान्ति) नहीं हैं। वस्तुतः क्रान्ति से उसका अभिप्रायः शासन व्यवस्था में हरेक छोटे-बड़े परिवर्तन से है, जैसे-

(i) किसी स्थापित शासन पद्धति के स्थान पर दूसरे प्रकार की शासन-पद्धति स्थापित होना, जैसे-जनतन्त्र के स्थान पर धनिकतन्त्र (Oligarchy) या धनिकतंत्र के स्थान पर जनतंत्र स्थापित होना।

(ii) किसी क्रांतिकारी दल द्वारा शासन पद्धति को ज्यों का त्यों रखते हुए शासन की बागडोर अपने हाथों में ले लेना।

(iii) किसी शासन-पद्धति को बदले बिना उसकी मात्रा को बदल देना; जैसे कि जनतंत्र शासन पद्धति को और अधिक जनतांत्रिक बना देना।

(iv) किसी शासन-पद्धति के किसी एक अंश को बदल देना, जैसे-स्पार्टा में लीसान्डेर (Lysander) द्वारा राजपद को तथा पौसानियास (Pausanias) द्वारा पंचों के पद को समाप्त करने का प्रयास ।

क्रांति के प्रकार (Types of Revolution)-अरस्तू ने क्रान्ति के उद्देश्य, इसके लिए अपनाए गए साधनों और व्यक्तियों के आधार पर क्रान्तियों को निम्नलिखित छः प्रकारों में विभक्त किया है-

1. पूर्ण एवं आंशिक क्रांति (Total and Partial Revolution)- अरस्तू के अनुसार परिवर्तन के आधार पर क्रांति या तो पूर्ण हो सकती है या आंशिक। जब शासन पद्धति के रूप में पूर्ण रूप से परिवर्तन हो जाता है, तो उसे पूर्ण क्रांति कहा जाता है और जब शासन पद्धति के किसी एक अंग में ही परिवर्तन होता है, तो उसे आंशिक क्रांति कहकर पुकारा जाता है।

2. रक्त-रंजित एवं रक्तहीन क्रांति (Blooly and Bloodless Revolution)-काति में अपनाए गए साधनों के आधार पर क्रांति या तो रक्त-रंजित पर फिर रक्तविहीन हो सकती है। उसका कहना है कि जब परिवर्तन के लिए हिंसक साधनों का प्रयोग किया जाए, तो इसे रक्त-रजित क्रांति कहा जाता है और जब शान्तिपूर्ण साधनों के प्रयोग द्वारा परिवर्तन किया जाए, तो उसे रक्त-विहीन क्रांति कहा जाता है।

3. व्यक्तिगत एवं अव्यक्तिगत क्रांति (Personal and Inpersonal Revolution)- सत्ता में स्थापित व्यक्तियों के आधार पर क्रांति दो प्रकार की हो सकती है-व्यक्तिगत और अव्यक्तिगत। उसके अनुसार जब क्रांति के माध्यम से सत्ताधारी सर्वोच्च व्यक्ति में परिवर्तन कर दिया जाए तो उसे व्यक्तिगत क्रांति कहा जाता है और जब सत्ता पक्ष के अधिकांश व्यक्तियों में परिवर्तन कर दिया जाता है, तो उसे अव्यक्तिगत क्रांति का नाम दिया जाता है।

4. वर्ग-विशेष के विरुद्ध क्रांति (Revolution against a Particular Class)- वर्ग को आधार मानते हुए अरस्तू एक चौथी प्रकार की क्रांति का उल्लेख करता है। उसके अनुसार जब सत्ता पर किसी एक वर्ग-विशेष के नियंत्रण के स्थान पर किसी दूसरे वर्ग का नियन्त्रण हो जाता है, तो उसे वर्गीय क्रांति का नाम दिया जाता है।

5. बौद्धिक क्रांति (Intellectual Revolution)-बौद्धिक क्रांति से अरस्तू का अभिप्रायः उस प्रकार की कांति से है, जब कोई बुद्धिजीवी वर्ग या व्यक्ति अपने भाषण द्वारा जनता को अपने पक्ष में कर लेता है और शासन-पद्धति में परिवर्तन कर देता है।

6. लोकतान्त्रिक एवं अल्पतान्त्रिक क्रांति (Democratic and Oligarchic Revolution)- यह क्रांति का छठा और अन्तिम प्रकार है और इसका आधार शासन पद्धति में परिवर्तन है। जब लोकतान्त्रिक पद्धति को बदलकर अल्पतान्त्रिक पद्धति स्थापित कर दी जाती है, तो इसे अल्पतान्त्रिक क्रांति और जब अल्पतांत्रिक पद्धति के स्थान पर लोकतान्त्रिक पद्धति स्थापित कर दी जाती है, तो इसे लोकतान्त्रिक क्रान्ति कहा जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अरस्तू अपने समय में हुए परिवर्तनों के आधार पर क्रांतियों को उपर्युक्त छः वर्गों में विभक्त करता है।

क्रांति के कारण (Causes of Revolution)-अरस्तू ने मानव के मनोविज्ञान और शासन-पद्धतियों के विभिन्न प्रकारों के आधार पर क्रान्ति के कारणों को तीन भागों में बाँटा है-मूल कारण, सामान्य कारण और विशिष्ट शासन पद्धतियों के विशेष कारण। इन कारणों की विवेचना इस प्रकार की जा सकती है।

1. मूल कारण (Basic Cause)- अरस्तू के अनुसार क्रांति का मूल कारण असमानता है। बार्कर के शब्दों में, "क्रान्ति का मूल कारण समानता की भावना है।" यह समानता दो प्रकार की होती है-संख्यात्मक समानता और योग्यता-सम्बन्धी समानुपातिक समानता। उसके मतानुसार सभी व्यक्तियों को समान मानकर उनके बीच किसी प्रकार का भेद-भाव न करना संख्यात्मक समानता कहलाती है, जब कि दूसरे प्रकार की समानता के अन्तर्गत व्यक्तियों के जन्म, योग्यता और सम्पत्ति के आधार पर व्यक्तियों को असमान माना जाता है। अरस्तू इस दूसरी प्रकार की समानता को ही उचित मानता है और राज्य द्वारा राजकीय पदों और पुरस्कारों का वितरण इसी के आधार किया जाना चाहता है। उसका कहना है कि समानता के विषय में इन परस्पर विरोधी दोनों अयों के कारण ही विद्रोह पैदा होता है। उदाहरण के लिए लोकतन्त्र में सभी व्यक्तियों के अधिकार समान माने जाते हैं, किन्तु कुलीनतन्त्र (Aristocracy) और यनिकतन्त्र (Oligarchy) में उच्च कुलों में जन्म लेने वाले तथा धनिक व्यक्तियों के कुछ विशेषाधिकारों को मान्यता मिली होती है। अधिकारों की यह विषमता प्रथम प्रकार की समानता में विश्वास रखने वाली जनता को सहन नहीं होती है और वह क्रांति का सहारा ले लेती है। इसके विपरीत, लोकतन्त्र में संख्यात्मक समानता पर बल दिया जाता है, जिसके कारण योग्य व्यक्तियों के स्थान पर अयोग्य व्यक्तियों को ही महत्त्व प्रदान किया जाता है। इससे योग्य व्यक्ति स्वयं को उपेक्षित अनुभव करते हैं और वे शासन पद्धति में परिवर्तन लाने की सोचते हैं।

अरस्तू इस स्थिति से उत्पन्न मनोदशा को क्रांति का मूल कारण मानता है। उसके शब्दों में, "कुछ मुनष्य ऐसे होते हैं, जिनके हृदय समानता की भावना से ओत-प्रोत होते हैं। वे यह जानते हुए विद्रोह किया करते हैं कि यद्यपि वे उन लोगों के समान हैं, जो उनसे अधिक (धन-सम्पत्ति) पाए हुए हैं, तो भी उनको स्वयं अन्य लोगों से कम (सुविधाएँ) प्राप्त हैं। दूसरे कुछ विद्रोह करने वाले वे लोग होते हैं, जिनका हृदय असमानता (अर्थात् अपनी उच्चता) की भावना से भरा होता है, क्योंकि वे यह समझते हैं कि यद्यपि वे अन्य मनुष्यों से बढ़कर हैं, तो भी उनको अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक कुछ नहीं मिलता, बल्कि या तो दूसरों के बराबर या उनसे कम मिलता है।... यही वह मनोदशा है, जिससे क्रांतियों की उत्पत्ति होती है।"

2. सामान्य कारण (General Causes) - अरस्तू द्वारा बताए गए क्राति के सामान्य कारण निम्नलिखित हैं-

(i) शासकों की स्वार्थी भावना (Selfishmess of Rulers)- अरस्तू के अनुसार जब कभी शासक जनता के हितों की परवाह न करके अपने निजी स्वार्थी की पूर्ति में लग जाते हैं, तो जनता ऐसे शासकों या ऐसी शासन-व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के लिए क्रांति कर देती है।

(ii) सम्मान की लालसा (Longing for Honour)- जब कभी शासक किसी व्यक्ति को बिना योग्यता या उचित कारण के अनुचित प्रकार से सम्मानित या अपमानित करते हैं, तो इससे जनता रुष्ट होकर क्रांति का सहारा ले लेती है।

(iii) उत्कृष्टता की भावना (Feeling of Superiority)- जब किसी राज्य में कोई व्यक्ति या व्यक्तियों का कोई समूह स्वयं को अन्य व्यक्तियों से श्रेष्ठ समझने लगता है और इस आधार पर शासन-सत्ता अपने हाथ में लेता है, तो इससे क्रांति का जन्म होता है और इसके फलस्वरूप शासन कुलीनतन्त्र या आनुवंशिक धनिकतन्त्र में बदल जाता है।

(iv) भय की भावना (Feeling of Fear)- अरस्तू के मतानुसार भय के कारण दो प्रकार के व्यक्ति क्रांति कर देते हैं। पहले वे व्यक्ति, जिन्हें अपराध करने पर दण्ड मिलने का भय रहता है। ये दण्ड से बचने के लिए क्रांति कर देते हैं। दूसरे, वे लोग होते हैं, जिन्हें अपने साथ होने वाले अन्याय का भय होता है। इससे बचने के लिए ये भी क्रांति कर देते हैं।

(v) घृणा की भावना (Feeling of Hate) - घृणा की भावना भी क्रान्ति को जन्म देती है। धनिक तन्त्र में जब धनिक वर्ग निर्धन जनता को तिरस्कार और घृणा की भावना से देखता है, तो दरिद्र जनता क्रांति कर बैठती है। साथ ही जब धनिक वर्ग को राष्ट्र में फैली हुई अव्यवस्था और अराजकता के प्रति घृणा हो जाती है, तब भी क्रांति हो जाती है।

(vi) किसी वर्ग की जनसंख्या में असाधारण वृद्धि (Unusual Growth in Population of a Class)-जब राज्य के किसी प्रदेश, वर्ग आदि की वृद्धि से दूसरे प्रदेशों एवं वर्गों को अपने अस्तित्त्व को लेकर चिन्ता होने लगती है, तो वे असुरक्षा की भावना के कारण क्रान्ति कर देते हैं।

(vii) निर्वाचन-सम्बन्धी षड्यन्त्र(चुनाव में धांधली) (Electoral Conspiracy) - जब कभी चुनावों में अनियमितताओं और षड्यन्त्रों का सहारा लिया जाता है और इनका परिणाम पहले से ही निश्चित होता है, तो इन दोषों को दूर करने के लिए जनता क्रान्ति कर देती है।

(viii) जनता का आलस्य (Passive Attitude of People)- जब कभी किसी राज्य की जनता आलसी बन जाती है और ऐसे व्यक्तियों के सत्तारूढ़ होने का मार्ग प्रशस्त कर देती है, जो राज्य के प्रति निष्ठावान नहीं होते, तो ऐसी स्थिति में शासक जन -क्रांति करके शासन पद्धति का स्वरूप बदल देते हैं।

(ix) छोटे परिवर्तनों की उपेक्षा (Negligence of Minor Changes) - अरस्तू के मतानुसार छोटे-छोटे परिवर्तनों की उपेक्षा करने से भी क्रांति हो जाती है, क्योंकि ये छोटे-छोटे परिवर्तन धीर-धीरे बड़े परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त कर देते हैं।

(x) विजातीय तत्त्व (Hetrogeneous Elements)-अरस्तू की धारणा है कि राज्य में निवास करने वाली सभी जातियों में ताल-मेल बहुत आवश्यक है, लेकिन ऐसा अनुभव न करने वाले विजातीय तत्त्व शत्रु-पक्ष से मिल जाते हैं और राज्य के लिए संकट पैदा कर देते हैं। इसीलिए शासक को अपने राज्य में विदेशियों को बसने की अनुमति नहीं देनी चाहिए।

(xi) पारिवारिक विवाद (Family-Disputes)- अरस्तू के अनुसार जब कभी शासक वर्ग पारिवारिक विवादों में उलझ जाता है, तो इसी स्थिति में शाही परिवार के असन्तुष्ट जन सत्ता पर अधिकार करने का प्रयास करते हैं और क्रांति हो जाती है।

(xii) शक्ति-सन्तुलन का अभाव (Lack of Balance of Power)- जब किसी राज्य में एक पक्ष दूसरे पक्ष से अधिक प्रबल हो जाता है, तो दूसरा वर्ग उससे झगड़ा मोल नहीं ले सकता, किन्तु जब दोनों पक्षों के मध्य शक्ति-सन्तुलन बन जाता है, तो दोनों ही पक्ष सफलता की कामना के वशीभूत होकर एक-दूसरे से उलझ जाते हैं।

(xiii) मध्यम वर्ग का अभाव (Absence of Middle Class)- अरस्तू का कहना है कि राज्य में स्थिरता बनाए रखने के लिए मध्यम वर्ग का होना आवश्यक है, क्योंकि यह वर्ग उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के बीच संवाद बनाए रखता है और इस प्रकार संवादहीनता की स्थिति के कारण होने वाली क्रांति को रोक देता है।

3. विशिष्ट कारण (Particular Causes) - क्रांति के मौलिक एवं सामान्य कारणों की विवेचना के बाद अरस्तू विभिन्न शासन -पद्धतियों में होने वाले परिवर्तन की विवेचना करता है। उसके मतानुसार अलग-अलग शासन-पद्धतियों में परिवर्तन अलग-अलग कारणों से होते हैं, जैसे-

1. लोकतन्त्र (Democracy)- अरस्तू लोकतान्त्रिक शासन पद्धति में परिवर्तन (क्रांति) लाने के तीन कारण मानता है। प्रथम, लोकतन्त्र में भाषण-कला में निपुण जनान्दोलक लोग (Demogogues) जनता को धनिक व्यक्तियों के विरुद्ध भड़काते है; उनके साथ अन्यायपूर्ण व्यावहार करते हैं; उन पर कर लगाते हैं और अन्ततः उन्हें क्रान्ति के लिए विवश करते हैं। द्वितीय, ये जनान्दोलक लोग सेनापति बनकर सत्ता हथिया लेते हैं और तृतीय, ये लोग जनता की लोकप्रियता प्राप्त करने के लिए सत्ता को अपने हाथों में ले लेते हैं।

2. धनिकतन्त्र (Oligarchy)- अरस्तू के मतानुसार धनिकतन्त्र में परिवर्तन दो कारणों से होता है। प्रथम, गरीब जनता के साथ अन्यायपूर्ण व्यावहार जनता को क्रांति करने के लिए प्रेरित करता है तथा द्वितीय, धनिक वर्ग में अन्तःकलह और द्वन्द्व भी क्रान्ति को जन्म देते हैं।

3. कुलीन तंत्र (Aristocracy) - कुलीनतंत्र ऐसी शासन पद्धति होती है, जिसमें कुलीन वर्ग के कुछ व्यक्तियों के पास शासन-सत्ता होती है और अधिकांश जनता की शासन-सत्ता में भागीदारी नहीं होती है। ऐसी स्थिति में बहुसंख्यक वर्ग के लोग क्रान्ति कर देते हैं। इस प्रकार, कुलीनतन्त्र में शासन-सत्ता में भाग लेने वाले लोगों की सीमित संख्या ही क्रान्ति का कारण बनती है।

4. राजतन्त्र (Monarchy)- राजतन्त्र शासन पद्धति में सत्ता एक ही व्यक्ति के पास होती है और समस्त जनता उसके अधीन रहते हुए उसके आदेशों का पालन करती है। इस प्रकार इसमें असमानता बनी होती है। यह असमानता ही क्रांति की जननी होती हैं, क्योंकि योग्य व्यक्ति जो शासन चलाते हैं, वे ही क्रांति के सूत्राधार बन जाते हैं। इसके अलावा निरंकुश राजतन्त्र में जनता में शासक के प्रति जो भय और घृणा होती है, वही उस व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के लिए जिम्मेदार हो जाती है।

5. निरंकुशतन्त्र (Tyranny)- निरंकुश शासन पद्धति में समस्त सत्ता एक ऐसे व्यक्ति के हाथों में होती है, जो जनता की इच्छा के विरुद्ध उस पर कठोरता से शासन करता है। इस स्थिति में जनता में शासक के प्रति असम्मान और घृणा की भावना पैदा हो जाती है, जिसके कारण जनता उससे छुटकारा पाने के लिए क्रांति कर देती है।

क्रांति को रोकने के उपाय (Measures for the Prevention of Revolation)- क्रांति को रोकने के लिए अरस्तू निम्नलिखित उपायों के अपनाने पर बल देता है-

1. कानून की सर्वोच्चता (Supremacy of Law)- अरस्तू कानून का पालन और कानून की सर्वोच्चता को क्रान्ति को रोकने का एक उपाय बताता है। अतः शासक को चाहिए कि वह जनता में कानून के पालन करने तथा कानून के प्रति सम्मान बढ़ाने की भावना उत्पन्न करें, क्योंकि कानून की अवहेलना किसी राष्ट्र को उसी प्रकार नष्ट कर देती है, जैसे लगातार थोड़ा-थोड़ा खर्च करने से धन का विशाल खजाना खाली हो जाता है।

2. आनुपातिक समानता (Proportional Equality)- अरस्तू के अनुसार असमानता क्रांति का मूल कारण है। इसी कारण वह समानता कायम करने पर बल देता है, लेकिन वह संख्यात्मक समानता पर नहीं, बल्कि आनुपातिक समानता पर बल देता है, जिसका अर्थ नागरिकों में पद और पुरस्कार का वितरण उनकी योग्यता और धन के आधार पर राज्य को दिए गए उनके योगदान के अनुपात में होना चाहिए।

3. शक्तियों का विकेन्द्रीकरण (Decentralization of Powers)- अरस्तू मानता है कि एक व्यक्ति के हाथों में समस्त शक्ति आ जाने से भ्रष्टाचार और निरंकुशता का जन्म होता है। अतः शक्ति सभी व्यक्तियों में विभक्त होनी चाहिए और प्रत्येक शक्ति-धारक व्यक्ति पर कानून का अंकुश होना चाहिए।

4. जनता के प्रति सद्व्यावहार (Good Behaviour towards People)- अरस्तू कहता है कि शासक को जनता के प्रति सदैव सद्व्यावहार करना चाहिए। उसको जनता के प्रति कोई ऐसा व्यावहार नहीं करना चाहिए, जिससे उसके आत्म-सम्मान को ठेस लगे या उसके प्रति अन्याय हो।

5. सार्वजनिक पद से व्यक्तिगत लाभ नहीं (No Personal Gain from Public Office)- अरस्तू का कहना है कि क्रांति को रोकने के लिए सार्वजनिक पदों को व्यक्तिगत लाभ या धनोपार्जन का साधन नहीं बनने दिया जाना चाहिए, क्योंकि जनता में तब रोष उत्पन्न हो जाता है, जब वह देखती है कि शासक सम्मान पाने के लिए सार्वजनिक धन की बरबादी कर रहा है। इससे जनता में दोहरा रोष उत्पन्न होता है, क्योंकि एक और तो वह स्वयं को शासकीय पद से वंचित पाती है और दूसरी और सार्वजनिक सम्पत्ति में भी उसकी हिस्सेदारी नहीं होती है।

6. उचित शिक्षा-पद्धति (Proper Education-System)- अरस्तू ने अपने आदर्श राज्य की स्थापना के लिए उचित शिक्षा-पद्धति को अपरिहार्य बताया है। उसकी मान्यता है कि किसी शासन पद्धति को स्थिरता प्रदान करने के लिए उसके अनुरूप शिक्षा पद्धति को ही अपनाया जाना चाहिए। बच्चों को आरम्भ से ही इस प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिए कि वे विद्यमान शासन पद्धति को उचित मानें और उसी के अनुसार स्वयं को ढालने का प्रयास करें।

7. प्रतिष्ठित व्यक्तियों में कलह का न होना (No Strife among Elite Class)-अरस्तू का कहना है कि प्रतिष्ठित एवं गणमान्य व्यक्तियों में विवाद उत्पन्न नहीं होने देने चाहिएँ, क्योंकि ये राज्य में पारिवारिक एवं वंशानुगत गुटबन्दी पैदा कर देते हैं और इनसे क्राति का जन्म होता है।

8. क्रांतिकारी तत्त्वों पर प्रतिबन्ध (Restrictions on Revolutionary Elements)-अरस्तू की धारणा है कि शासन पद्धतियाँ कैसी भी हों, सभी में क्रांति के तत्त्व हमेशा विद्यमान होते हैं और महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति अवसर मिलते ही क्रांति कर देते हैं।। अतः शासक को एक ऐसे राजकीय पदाधिकारी की नियुक्ति करनी चाहिए, जो इस बात का ध्यान रखे कि व्यक्ति अपना जीवन शासन-व्यवस्था के अनुकूल बिता रहे हैं या नहीं।

9. देशभक्ति की भावना (Feeling of Patriotism)- अरस्तू के मतानुसार क्रांति को रोकने का एक प्रमुख उपाय देशभक्ति की भावना है। अतः वह शिक्षा के माध्यम से जनता में देशभक्ति की भावना पैदा करने पर बल देता है। उसका कहना है कि देशभक्ति की यह भावना शासक और शासित दोनों में समान रूप से होनी चाहिए। इसके लिए वह सलाह देता है कि राजकीय पदों पर विदेशी व्यक्तियों की नियुक्ति नहीं की जानी चाहिए, क्योंकि इनमें देशभक्ति की भावना का अभाव होता है।

10. सम्पत्ति पर सीमाएँ (Limits on Property)- यद्यपि अरस्तू सम्पत्ति के वैयक्तिक स्वामित्व और इसके सामूहिक प्रयोग की व्यवस्था को सर्वाधिक उपयुक्त मानता है, फिर भी वह यह मानता है कि सम्पत्ति के स्वामित्व की उचित सीमाएँ निर्धारित की जानी चाहिए, जिससे कि धनी और निर्धन के मध्य अन्तर को ऐसे स्तर पर रखा जा सके कि दोनों वर्गों के हितों की पूर्ति हो जाए। इसके साथ ही इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि सार्वजनिक सम्पत्ति व्यक्तियों द्वारा नहीं हड़पी जानी चाहिए, बल्कि इसका हस्तान्तरण सभी नागरिकों के समुदाय में किया जाना चाहिए।

दासता सम्बन्धी विचार (Views regarding Slavery)

प्रश्न — अरस्तू के दासता सम्बन्धी विचारों का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए। (Critically discuss the views of Aristotle regarding slavery.)

उत्तर — अरस्तू के अनुसार दास कौन है? इसको स्पष्ट करते हुए कहा है-'1. कोई व्यक्ति जो स्वभाव से स्वयं अपना नहीं है बल्कि दूसरे का है, वह प्राकृतिक रूप से दास है,

2. वह व्यक्ति जो एक मनुष्य होते हुए भी सम्पत्ति की एक वस्तु और दूसरे का है,

3. सम्पत्ति की वह वस्तु जो कार्य का उपकरण है तथा जिसे सम्पत्ति के मालिक से अलग किया जा सकता है, दास कहलाता है।"

उसके अनुसार दास वह व्यक्ति है जिसका अपना कोई दिमाग और व्यक्तित्व नहीं है और वह एक यन्त्र की भांति कार्य करता है। दास-प्रथा को अरस्तू ने मालिक और दास दोनों के लिए लाभकारी माना है। मालिक का काम यह है कि दास उसके कार्यों को सम्पन्न कराता है और दास का लाभ यह है कि क्योंकि दास के पास विवेक और व्यक्तित्व नहीं हैं, अतः मालिक उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है और उसे सुरक्षा प्रदान करता है।

दासता का औचित्य (Justification of Slavery)

अरस्तू ने दासता का औचित्य प्रदान करते हुए कहा है कि "यह बात आवश्यक तथा व्यावहारिक है कि कुछ शासन करेंगे और दूसरों पर शासन किया जायेगा। पैदा होते ही कुछ लोग शासन करने के लिए तथा कुछ शासित होने के लिए निर्धारित कर दिये जाते हैं।"

अरस्तू ने दास प्रथा को उचित बताते हुए निम्नलिखित तीन आधार बताए हैं-

1. दासता प्राकृतिक है (Slavery is natural): अरस्तू का कहना है कि जिस प्रकार से परिवार प्राकृतिक है, उसी प्रकार से दास-प्रथा भी प्राकृतिक है। कुछ लोग शासन करने के लिए पैदा होते हैं और कुछ लोग शासित होने के लिए। मालिकों में बुद्धि और निर्णय लेने की क्षमता होती है और दासों में यह योग्यता नहीं पाई जाती। इसलिए दास-प्रथा न केवल प्राकृतिक है बल्कि आवश्यक भी है। प्रकृति ने सभी मनुष्यों को समान नहीं बनाया है। हमेशा से सर्वोच्च ने निम्न पर शासन किया है।

2. दास-प्रथा मालिक एवं दास दोनों के लिए लाभकारी (Slavery is useful for both the owner and the slave) : अरस्तू का दूसरा तर्क यह है कि दास-प्रथा मालिक और दास, दोनों के लिए लाभकारी है। इससे मालिकों के पास मानसिक कार्य करने के लिए और समय रह जाता है। दासों की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है और मालिकों द्वारा उन्हें सुरक्षा मिल जाती है। कार्य का उचित प्रकार से वितरण होने के कारण राज्य और समाज, दोनों का भी भला होता है। शारीरिक कार्य दासों द्वारा और मानसिक कार्य मालिकों द्वारा सम्पन्न होता है।

3. दास-प्रथा नैतिक एवं उचित है (Slavery is moral and proper): अरस्तू का विचार है कि दास-प्रथा नैतिक आधार पर भी उचित है। राज्य का आधार यही है कि यह शासक और शासितों के सम्बन्धों से बनता है। दास-प्रथा यह सम्बन्ध विकसित करने में सहायता करती है। जो लोग समानता में विश्वास करते हैं, वह एक आदर्शवादी विचारधारा है, यथार्थवादी विचारधारा नहीं। अरस्तू का कहना है कि समानता का सिद्धान्त यूनान के नगर राज्यों की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को बर्बाद कर सकता है।

इस प्रकार से अरस्तू ने प्राकृतिक, नैतिक और लाभ के आधार पर दास-प्रथा को उचित बताकर इसका समर्थन किया है।

दासों के प्रकार(Types of Slaves)

अरस्तू ने दासों के दो प्रकार बताए हैं:

1. प्राकृतिक दास (Natural Slaves): इसमें अरस्तू ने उन दासों को शामिल किया है जिनमें बुद्धि और विवेक नहीं है, तया जो अपनी जीविका स्वयं नहीं चला सकते।

2. कानूनी दास (Legal Slaves): इसमें अरस्तू ने उन लोगों को शामिल किया है जो हारे हुए प्रदेशों के हैं। उसका कहना है कि जीतने वाले, हारने वालों की अपेक्षा सर्वोच्च होते हैं। अतः उन्हें कानूनी रूप से हारने वालों को दास के रूप में रखने का अधिकार है।

दास-प्रथा में सुधार के उपाय (Measures of Improvement in Slavery System)

अरस्तू ने दास-प्रथा का समर्थन किया लेकिन वह अपने समय में प्रचलित दास-प्रथा की बुराइयों से पूरी तरह से अवगत था। अतः अरस्तू ने दास-प्रथा में सुधार करने के लिए कई सुझाव दिये हैं-

1. अरस्तू का कहना है कि दास-प्रथा वंशानुगत नहीं होनी चाहिए। उसका मानना है कि यह आवश्यक नहीं है कि बुद्धिमान के बुद्धिमान ही पैदा होगा और बुद्धिहीन के बुद्धिहीन ।

2. दास को उसी समय तक दास रखना चाहिए जब तक उसमें बुद्धि और विवेक का अभाव है। ज्यों ही उसमें बुद्धि और विवेक का विकास हो, उसे दाराता से मुक्त कर देना चाहिए।

3. दासों के प्रति सहानुभूति का दृष्टिकोण होना चाहिए और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति की जानी चाहिए। दास परिवार का महत्त्वपूर्ण अंग ही नहीं, मालिकों का अतिरिक्त अंग होते हैं जो शारीरिक कार्य में उनकी सहायता करते हैं।

4. दासों की संख्या सीमित होनी चाहिए जिससे कि उनकी उपयोगिता बनी रहे।

5. दासों से उतना ही कार्य लेना चाहिए, जितनी की उसमें क्षमता हो।

6. दास मालिक के शरीर के अंग के समान हैं, मालिक को दास की देखभाल अपने शरीर के अंग के समान करनी चाहिए।

7. दासों को यह अवसर प्रदान किया जाना चाहिए कि उनके अच्छे कार्य से उन्हें स्वतंत्र किया जा सकता है।

8. मालिकों को ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि उसकी मृत्यु के बाद उसके दास स्वतंत्र हो सकें। स्वयं अरस्तू ने अपनी वसीयत में लिखा था कि उसकी मृत्यु के बाद उसके दासों को स्वतंत्र कर दिया जाए।

9. मालिकों को हमेशा यह प्रयत्न करना चाहिए कि उसके दास के साथ सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण बने रहें।

10. उन मालिकों को दण्ड दिया जाए जो अपने दासों से अमानवीय व्यवहार करते हैं।

11. यूनान के नागरिक श्रेष्ठ हैं। अतः उन्हें दास नहीं बनाया जाना चाहिए।

जहाँ मैक्सी का कथन है कि "इस प्रकार के वर्णन के कारण अरस्तू की 'राजनीति' उन पुस्तकों में आती है जिन पर प्रतिबन्ध होना चाहिए।"

आलोचना (Criticism): आधुनिक युग में दास-प्रथा को मानव जाति के लिए सबसें गलत मानते हुए इसे न केवल अनैतिक घोषित किया गया है बल्कि यह गैर-कानूनी भी है। इसी कारण से अरस्तू के दास-प्रथा सम्बन्धी विचारों की आलोचना की जाती है-

1. मनुष्य पर जन्म का नहीं अपितु वातावरण का प्रभाव (Individual effect from environment not by birth):

अरस्तू ने प्राकृतिक तौर पर शासक और शासित का जो नियम बताया है, यह पूरी तरह से गलत है। व्यक्ति पर जन्म का नहीं अपितु वातावरण का प्रभाव पड़ता है।

2. दासता प्राकृतिक नहीं (Slavery is not natural): दासता प्राकृतिक नहीं है। आधुनिक युग में सभी मनुष्यों को समान माना जाता है। अरस्तू के विचारों का सम्मान न तो प्राकृतिक आधार पर, न ही कानूनी आधार पर और न ही नैतिक आधार पर किया जा सकता है।

3. विवेक के बिना कार्य सम्भव नहीं (No work is possible without reason): अरस्तू का कहना है कि दासों में विवेक और बुद्धि नहीं होती। अगर किसी में विवेक और बुद्धि नहीं होती तो वह आदेशों को समझकर उनका पालन करने में भी सक्षम नहीं होता।

4. दासों के निर्धारण का मापदण्ड नहीं (No measurement to determine slavery): कौन व्यक्ति मालिक होगा और कौन दास होगा? इस सन्दर्भ में निर्धारित करने के लिए अरस्तू ने कोई तरीका नहीं बताया है।

5. विरोधाभास (Paradoxes): अरस्तू के विचारों में हमें विरोधाभास देखने को मिलता है। एक तरफ तो अरस्तू दासता को प्राकृतिक मानता है और दूसरी तरफ दासों को मुक्त करने का प्रावधान करता है।

6. राज्य की एकता को खतरा (Danger to state unity): अरस्तू ने अपने दास-प्रथा सम्बन्धी विचारों में वर्ग-संघर्ष को जन्म दिया है। उसने पूरे समाज और राज्य को शासक और शासित तथा मालिक और दास में विभाजित करके, राज्य की एकता के लिए खतरा उत्पन्न कर दिया है।

7. दासों का निश्चित स्तर नहीं (No fixed status of slaves): अरस्तू के दास-प्रथा सम्बन्धी विचारों की आलोचना इस आधार पर भी की जाती है कि उसने दासों का स्तर निर्धारित नहीं किया है। न तो वह उन्हें पशु मानता है और न ही पूर्ण मनुष्य। उसने राज्य की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के लिए दास-प्रथा को आवश्यक माना है, वह भी गलत है। मालिक और दासों का संघर्ष, जहाँ सामाजिक व्यवस्था की एकता को नष्ट करेगा, वहीं शोषण से आर्थिक व्यवस्था सुदृढ़ नहीं होती बल्कि यह अच्छी आर्थिक योजनाओं का परिणाम होती है।

8. पक्षपाती विचार (Prejudiced views): एबनस्टिन का कहना है कि अरस्तू ने अपने समय में स्थापित इस कुप्रथा का समर्थन करके अपने पक्षपाती दृष्टिकोण का परिचय दिया है। एबनस्टिन के शब्दों में- "उसके द्वारा दासता को स्वीकार करना यह दर्शाता है कि उस जैसा बुद्धिमान और महान् दार्शनिक अपने समय की समस्याओं का दास हो सकता है और उनका औचित्य स्वापित करने में पक्षपाती हो सकता है।"

9. न्याय एवं नैतिकता के विरुद्ध (Against Justice and Morality): अरस्तू कुछ भी तर्क दासता के समर्थन के लिए क्यों न प्रस्तुत करे, फिर भी व्यक्ति के द्वारा व्यक्ति के शोषण को न्यायपूर्ण एवं नैतिक नहीं कहा जा सकता।

10. अन्तर्विरोध (Inner-Contradictions): अरस्तू का विचार है कि मनुष्य को प्रकृति ने उत्पन्न किया है। यदि प्रकृति ने उत्पन्न किया तो कुछ व्यक्ति मूर्ख, बुद्धिहीन अथवा अपूर्ण कैसे उत्पन्न हुए? इस अन्तर्विरोध को अरस्तू दूर नहीं करता।

11. लोकतंत्र के विरुद्ध (Against Democracy): अरस्तू ने व्यक्तियों में भेद करके, उन्हें असमान मानकर लोकतंत्र के समानता के सिद्धान्त का उल्लंघन किया है।

12. जातीय श्रेष्ठता पर आधारित (Based on racial supremacy) — अरस्तू ने अनेक स्थानों पर यूनानियों की श्रेष्ठता स्थापित करने का अनावश्यक प्रयत्न किया है। दासता के विचारों में भी अरस्तू यूनानियों को दास न बनाने के लिए कहता है। यह संसार की अन्य जातियों का अपमान करता है।

13. आधुनिक समय में अमान्य (Not acceptable in modern time): अरस्तू के दासता सम्बन्धी विचार आज के आधुनिक युग में अवैधानिक माने जाते हैं। आधुनिक समय में इन विचारों को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

14. श्रमिक दास नहीं (Labour is not slave): अरस्तू ने मजदूरों और दासों में कोई अन्तर नहीं किया है। आधुनिक समय में भी व्यक्तियों द्वारा शारीरिक श्रम किया जाता है लेकिन उन्हें दात नहीं कहा जा सकता।

15. दास पशु नहीं है (Slave is not beast) : अरस्तू, दास को एक यन्त्र एवं सम्पत्ति मानकर उसे पशु के समान समझता है। पशु और व्यक्तियों में व्यापक अन्तर होता है। अरस्तू ने दासों को पशु की श्रेणी में रखकर मानव जाति की गरिमा एवं सम्मान को ठेस पहुंचाई है।

निष्कर्ष (Conclusion) : अन्त में कहा जा सकता है कि अरस्तू के दासता सम्बन्धी विचार उस समय की परिस्थितियों में तो उपयुक्त माने जा सकते थे लेकिन वर्तमान समय में ये नैतिक, प्राकृतिक और कानूनी रूप से सही नहीं है।

अरस्तू के सम्पत्ति सम्बन्धी विचार

प्रश्न — अरस्तू के सम्पत्ति सम्बन्धी क्या विचार थे? बताइये I (Discuss Aritotle's views of Property.)

उत्तर- अरस्तू ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'राजनीति' (Politics) के 8वें -11वें अध्याय तक सम्पत्ति संबंधी व्याख्या की है। वह अपने गुरु प्लेटो के सम्पत्ति के साम्यवाद के उस सिद्धांत को स्वीकार नहीं करता है, जिसके अन्तर्गत शासक और सैनिक वर्गों को सम्पत्ति के अधिकार से वंचित किया गया है, क्योंकि वह सम्पत्ति को समाज के लिए एक आवश्यक संस्था मानता है। अरस्तू के अनुसार सम्पत्ति का उद्देश्य जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति पशु-पालन, शिकार, डकैती, खेती व व्यापार जैसे व्यवसाय अपना करके की जा सकती है। इन सभी में वह खेती को सर्वश्रेष्ठ मानता है। अरस्तू के मतानुसार, "सम्पत्ति, उन साधनों के समूह का नाम है, जिसका घर पर या राज्य में प्रयोग होता है।" इस प्रकार उसकी दृष्टि में सम्पत्ति एक साधन है, जिसका उद्देश्य मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है। इसीलिए इसका संचय उसी सीमित मात्रा में होना चाहिए, जिस तक कि यह मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। किन्तु जब इसमें सीमा का कोई ध्यान नहीं रखा जाता, तब यह साधन न रहकर साध्य बन जाती है। इस प्रवृत्ति को व्यापार से बल मिलता है, इसीलिए वह व्यापार को उसी सीमा तक उचित मानता है, जिस सीमा तक यह जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। लेकिन जब व्यापार का लक्ष्य इन आवश्यकताओं की पूर्ति से बढ़कर धन कमाना और अपार सम्पत्ति-संग्रह करना हो जाता है, तो यह निन्दनीय हो जाता है। वह सूदखोरी को इसी आधार पर अनैतिक बताता है, क्योंकि इसका लक्ष्य व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति न होकर दूसरों की मजबूरी का लाभ उठाते हुए अधिकाधिक धन इकट्ठा करना होता है।

सम्पत्ति के प्रकार (Types of Property)- अरस्तू ने सम्पत्ति के दो प्रकार बताए हैं- **निर्जीव सम्पत्ति (Inani**mate Property) और **सजीव सम्पत्ति (**Animate Property)।

निर्जीव सम्पत्ति में वह मकान, धन, सोना, चाँदी और भूमि को शामिल करता है, जब कि सजीव सम्पत्ति में वह उन जीवित वस्तुओं को शामिल करता 'है, जिन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सके। सम्पत्ति की इस श्रेणी में वह दासों और पशुओं को शामिल करता है।

सम्पत्ति प्राप्त करने के साधन (Means of Acquiring Property)- अरस्तू ने सम्पत्ति प्राप्त करने के दो प्रमुख साधनों का उल्लेख किया है-

1. **प्राकृतिक साधन** (Natural Means)- सम्पत्ति प्राप्त करने के उचित साधन को वह प्राकृतिक साधन की संज्ञा देता है। उसके अनुसार श्रम से, खेती-बाड़ी और पशुपालन के द्वारा सम्पत्ति का अर्जन करना प्राकृतिक साधन कहलाता है, क्योंकि इसमें किसी का शोषण नहीं होता है। अतः यह सम्पत्ति अर्जित करने का उचित साघन है।

2. **अप्राकृतिक साधन** (Unnatural Means)- सम्पत्ति अर्जित करने के दूसरे साधन को अप्राकृतिक साधन कहा जा सकता है। इसके अन्तर्गत बिना परिश्रम किए आवश्यकता से अधिक धन कमाने वाले साधनों को शामिल किया जा सकता है।

सूदखोरी द्वारा आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति अर्जित करना अप्राकृतिक और साथ ही निन्दनीय साधन भी है।

धन अर्जित करने के साधनों को लेकर भी अरस्तू मध्यम-मार्ग का अनुसरण करता है। प्लेटो के समान वह व्यक्ति से धन कमाने के केवल प्राकृतिक साधन को अपनाने की अपेक्षा नहीं करता है। इसीलिए उसका कहना है कि दोनों में किसी भी साधन द्वारा व्यक्ति को केवल उतना ही धन अर्जित करना चाहिए, जितना कि उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक है; इससे अधिक नहीं।

सम्पत्ति का स्वामित्व और उपयोग (Ownership and Uses of Property)-अरस्तू ने सम्पत्ति के उत्पादन के अतिरिक्त इसके उपयोग के सम्बंध में भी विवेचन किया है। इस विषय में अपनी पुस्तक 'पॉलिटिक्स' में उसने निम्नलिखित तीन वैकल्पिक व्यस्थाओं का वर्णन किया है-

1. व्यक्तिगत स्वामित्व एवं सामूहिक उपयोग (Personal Ownership and Common Use)- अरस्तू के अनुसार सम्पत्ति के स्वामित्व और उपयोग सम्पत्ति के स्वामित्व एवं प्रयोग की प्रथम वैकल्पिक व्यवस्था है। (इसके अन्तर्गत सम्पत्ति का स्वामित्व वैयक्तिक होगा, किन्तु इसका उपयोग सम्पूर्ण समाज करेगा। अरस्तू के मतानुसार यह सबसे उत्तम विकल्प है, क्योंकि सम्पत्ति के व्यक्तिगत स्वामित्व के कारण उसकी सुरक्षा का दायित्व सुनिश्चित रहेगा और सामूहिक उपयोग से उसके दुरुपयोग पर पारस्परिक प्रतिबंध भी रहेगा।

2. सामूहिक स्वामित्व एवं वैयक्तिक उपयोग (Common Ownership and Personal Use)- सम्पत्ति के स्वामित्व एवं उपयोग का एक अन्य विकल्प इसका सामूहिक स्वामित्व एवं वैयक्तिक उपयोग हो सकता है। इसमें सम्पत्ति के अर्जित करने और उसके दुरुपयोग की समस्या सामने आएगी, क्योंकि व्यक्तिगत स्वामित्व न होने के कारण उसकी सुरक्षा का दायित्व निश्चित न होगा और व्यक्तिगत उपभोग का अधिकार मिलने पर उसका दुरुपयोग होने की ही सम्भावना रहेगी।

3. सामूहिक स्वामित्व एवं सामूहिक उपयोग (Common Owenership and Common Use)-इस विकल्प के तहत सम्पत्ति का स्वामित्व भी सामूहिक होगा और उसका उपयोग भी अर्थात् सम्पत्ति सभी की होगी और सभी उसका उपयोग करेंगे। इसमें सबसे बड़ी समस्या सम्पत्ति के अर्जित करने को लेकर और उसके दुरुपयोग के न रोके जाने की आएगी।

विशेषताएँ (Features) — अरस्तू के सम्पत्ति सम्बन्धी विचारों को निम्नलिखित विशेषताओं के माध्यम से बताया जा सकता है —

1. सामूहिक उपयोग पर बल (Emphasis on common use) : अरस्तू ने सम्पत्ति को सामाजिक जीवन का महत्वपूर्ण तत्त्व मानते हुए इसके व्यक्तिगत स्वामित्व और सामूहिक उपयोग पर बल दिया है।

2. सम्पत्ति के दो रूप (Two types of property) — अरस्तू ने आधुनिक समयानुसार सम्पत्ति को चल और अचल भागों में न बांटकर सजीव और निर्जीव नामक दो भागों में बांटा है। निर्जीव में उसने भूमि, मकान, मुद्रा, सोना, चांदी आदि को और सजीव में उसने पशु, दास आदि को शामिल किया है।

3. आवश्यकता से अधिक संचय की मनाही (Denial of having property more than needs) : अरस्तू ने व्यक्तिगत स्वामित्व पर तो बल दिया है लेकिन इसके साथ-साथ उसने आवश्यकता से अधिक धन के संचय के लिए मना किया है।

4. सम्पत्ति की आवश्यकता (Necessity of property) : सम्पत्ति को अरस्तू ने मानवीय चरित्र के विकास के लिए आवश्यक माना है जो उसे सभ्य, सुसंस्कृत और दानशील बनाती है।

5. संतुलित विचार (Balanced views): अरस्तू के सम्पत्ति विचारों को संतुलित कहा जा सकता है। इस अवधारणा में उसने मध्य मार्ग को अपनाया है। न तो प्लेटो के समान उसने सम्पत्ति के लिए मना किया है और न ही उसने अत्यधिक सम्पत्ति के संग्रह की वकालत की है।

6. प्राकृतिक साधन द्वारा अर्जन (Acquiring Through Natural Methods) : सम्पत्ति अर्जित करने के लिए अरस्तू ने

जिन तीन तरीकों का प्रयोग किया है उसमें प्राकृतिक साधन को उत्कृष्ट और अप्राकृतिक साधन को सबसे निकृष्ट माना है। श्रम द्वारा अर्जित धन को वह उत्तम और व्याज द्वारा अर्जित धन को वह निम्न बताता है।

सम्पत्ति का विनिमय (Exchange of Property): सम्पत्ति के लेन-देन को अरस्तू ने दो भागों में बांटा है-

1. नैतिक विनिमय (Moral Exchange): इसके अन्तर्गत सम्पत्ति का प्रयोग न केवल स्वयं करके उसका उपयोग करने का अधिकार आवश्यकतानुसार अन्यों को भी करने दिया जाता था।

2. अनैतिक विनिमय (Immoral Exchange): इसके अन्तर्गत सम्पत्ति से और अधिक सम्पत्ति प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। यह अनैतिक है। अरस्तू ने विनिमय को मान्यता प्रदान करके सम्पत्ति का औचित्य प्रमाणित किया है।

आलोचना (Criticism): अरस्तू के सम्पत्ति सम्बन्धी विचारों में कुछ कमियां भी हैं जिस कारण से उसकी आलोचना की जाती है:

1. सम्पत्ति के स्वामित्व सम्बन्धी उसके आधार पर्याप्त नहीं हैं और आधुनिक समय से मेल नहीं खाते। उसने सबसे उत्तम जो आधार बताया है कि सम्पत्ति का व्यक्तिगत स्वामित्व और सामूहिक उपयोग होना चाहिए वह वर्तमान समय में सम्भव नहीं है।

2. अरस्तू ने श्रम पर आधारित धन अर्जित करने को सबसे उत्तम माना है लेकिन केवल श्रम से धन नहीं अर्जित किया जा सकता। श्रम से केवल जीविका अर्जित की जा सकती है, धन नहीं।

3. अरस्तू ने ब्याज से अर्जित धन को उपयुक्त न मानते हुए उसके लिए मनाही की है लेकिन वर्तमान में ब्याज से अर्जित धन कानूनी ही नहीं, अपितु नैतिक भी माना जाता है।

4. अरस्तू के द्वारा जो धन के प्रकार बताए गये हैं, वे भी आधुनिक समय में मान्य नहीं है। वर्तमान में धन के प्रकार सजीव और निर्जीव न होकर चल और अचल माने जाते हैं।

5. अरस्तू ने अपने सम्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त में जो मध्य मार्ग अपनाया है उसके कारण उसके विचारों में संतुलन की बजाए विरोधाभास आ गया है। एक तरफ तो वह धन और सम्पत्ति को आवश्यक मानता है और उसके व्यक्तिगत स्वामित्व को मान्यता प्रदान करता है तथा दूसरी ओर उसके अत्यधिक संग्रह के लिए मना करता है।

निष्कर्ष (Conclusion)— अन्त में कहा जा सकता है कि यद्यपि अरस्तू के सम्पत्ति सम्बन्धी विचार आधुनिक समय से मेल नहीं खाते, फिर भी वह पहला विचारक था जिसने नैतिकता पर आधारित व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार को मान्यता प्रदान की और अपने गुरु प्लेटो के सम्पत्ति के साम्यवाद के सिद्धान्त को ठुकरा दिया। अरस्तू ने सम्पत्ति सम्बन्धी ऐसे संतुलित विचार दिये जिसमें व्यक्तिवाद सम्पत्ति के साथ-साथ उस पर रोक भी लगाई है, उसके ये विचार आधुनिक कल्याणकारी और समाजवादी राज्यों में लागू देखे जा सकते हैं।

अरस्तू : प्रथम राजनीतिक वैज्ञानिक

प्रश्न — अरस्तू को प्रायः 'राजनीति शास्त्र का जन्मदाता' क्यों कहा जाता है? चर्चा करें। (Why is Aristotle called the Father of Political Science?)

अथवा

इस मत की विवेचना कीजिए कि अरस्तू 'राजनीति विज्ञान का जन्मदाता था।' (Discuss the view that Aristotle was 'the father of Political Science'.)

उत्तर- राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में उसके योगदान को देखते हुए ही उसे राजनीति विज्ञान का जन्मदाता कहा गया है। अरस्तू

को निम्नलिखित कारणों से राजनीति विज्ञान का जन्मदाता एवं प्रथम राजनीतिक वैज्ञानिक कहा जाता है-

1. यथार्थवादी विचारक (Realistic Thinker) - अरस्तू अपने गुरु प्लेटो का प्रिय शिष्य होने के बाद भी उसके आदर्शवादी सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं करता है। प्लेटो ने अपने 'रिपब्लिक' में जिन व्यवस्थाओं का उल्लेख किया है, उन्हें क्रियात्मक रूप नहीं दिया जा सकता है। लेकिन अरस्तू ने अपने विख्यात ग्रन्थ 'राजनीति' में जिन व्यवस्थाओं का उल्लेख किया है, उन्हें लागू करना सर्वथा सम्भव है। प्लेटो ने आदर्श राज्य की स्थापना हेतु संरक्षक वर्ग के लिए सम्पत्ति एवं परिवार की संस्था का उन्मूलन किया है, जो कि एकदम अव्यावहारिक है। अरस्तू ने इसे अस्वीकार करते हुए सम्पत्ति और परिवार को कायम रखा है।

अरस्तू दार्शनिक राजा के स्थान पर 'विधि के शासन' को सर्वोच्चता देता है और आज अनेक देशों में विधि के शासन का यह सिद्धान्त लागू है। इतना ही नहीं, अरस्तू ने शिक्षा की जो योजना दी है, उसे भी लागू करना सम्भव है। उसने दास प्रथा की जो व्यवस्था की है, वह तो पहले ही यूनान में व्याप्त थी। इस प्रकार अरस्तू प्राकृतिक, ठोस एवं वास्तविक तथ्यों के आधार पर ही अपने सिद्धान्तों का निर्माण करता है।

2. आगमनात्मक पद्धति का प्रयोग (Use of Inductive Method)- अरस्तू ने अपने अध्ययन में आगमनात्मक पद्धति का प्रयोग किया है। यह पूर्णतः एक वैज्ञानिक पद्धति है और 'इसमें विशिष्ट से सामान्य की ओर' बढ़ा जाता है। वस्तुतः अरस्तू ऐसा व्यक्ति है, जिसने राजनीति विज्ञान में सर्वप्रथम आगमनात्मक पद्धति का प्रयोग किया है। ऐसी मान्यता है कि अरस्तू ने यूनान के 158 संविधानों का संग्रह कराया और इनका सूक्ष्म निरीक्षण और तुलनात्मक अध्ययन किया और तत्पश्चात् अनेक बहुमूल्य सामान्य निष्कर्ष निकाले। उसका यह ग्रन्थ इसी प्रकार के निष्कर्षों से भरा पड़ा है। राजनीति शास्त्र में आगमनात्मक पद्धति के प्रयोग के कारण ही उसे 'प्रथम राजनीतिक वैज्ञानिक' कहा गया है।

3. राजनीति शास्त्र का आचार-शास्त्र से पृथक्करण (Separation of Political Science form Ethics)-प्लेटो राजनीति शास्त्र को आचार-शास्त्र का एक अंग मानता है, इसीलिए उसने राजनीति शास्त्र को आचार-शास्त्र में समाहित कर दिया। इसके परिणामस्वरूप एक स्वतन्त्र विषय के रूप में राजनीति शास्त्र का अस्तित्त्व समाप्त हो गया। इसके विपरीत, अरस्तू वह प्रथम विचारक है, जिसने राजनीति शास्त्र को आचार-शास्त्र से पृथक् करके एक स्वतन्त्र विषय का दर्जा प्रदान किया। उसके मतानुसार आचार-शास्त्र का सम्बंध उद्देश्यों (Ends) से है, जब कि राजनीति शास्त्र का सम्बन्ध उन साधनों (Means) से है, जिनके द्वारा इन उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। राजनीति शास्त्र में राज्य का अध्ययन किया जाता है, जिसका लक्ष्य एक उत्तम जीवन की प्राप्ति है। यहाँ उत्तम जीवन से उसका अभिप्राय सद्गुणी (Virtuous) जीवन से है। इसका अभिप्रायः यह हुआ कि राज्य में रहकर ही मनुष्य सद्गुणी बन सकता है अर्थात् राज्य ही व्यक्ति का नैतिक और आध्यात्मिक विकास करके उसे सद्गुणी बनाता है।

4. राज्य के सिद्धान्त का क्रमबद्ध निरुपण (Systemic Description of Theory of State)-अरस्तू ही ऐसा प्रथम राजनीतिक विचारक है, जिसने राज्य की पूर्ण एवं क्रमबद्ध रूप से मीमांसा की है। वह राज्य के जन्म और उसके विकास से लेकर उसकी प्रकृति, उसके उद्देश्य, संविधान की अवधारणा और वर्गीकरण, सरकार का गठन, सम्पत्ति का सिद्धान्त, नागरिकता की व्याख्या, न्याय का सिद्धान्त, क्रान्ति का सिद्धान्त और कानून की सर्वोच्चता आदि अनेक विषयों पर विस्तार से प्रकाश डालता है। ये सभी विषय राजनीतिक चिन्तन के विषय हैं और इनका इतना क्रमबद्ध विवेचन प्लेटो ने भी नहीं किया है। वस्तुतः अरस्तू ही ऐसा पहला विद्वान् है, जिसने यह प्रतिपादित किया है कि "मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है।"

5. कानून की सर्वोच्चता (Supremacy of Law)- अरस्तू ने लॉज में वर्णित कानून की सर्वोच्चता के सिद्धान्त को ग्रहण किया। इसीलिए वह कहता है कि राज्य में कानून की सर्वोच्चता कायम होनी चाहिए। सरकार को इसे स्वीकार करना चाहिए और कानून के अधीन रहकर कार्य करना चाहिए। उसके मतानुसार,

सरकार चाहे जैसी भी हो, उसे स्वार्थहीन रखने के लिए कानून की सर्वोच्चता बनी रहनी चाहिए। कानून की - सर्वोच्चता या कानून के शासन से ही शासकों की स्वेच्छाचारिता पर रोक लगती है। अरस्तू इसका समर्थन करता हुआ लिखता है, "ठीक प्रकार से बनाए गए कानून ही अन्तिम रूप से सम्प्रभु होने चाहिए।" कानून की सर्वोच्चता के लिए अरस्तू ने जिस सिद्धान्त का

प्रतिपादन किया है, उसमें वैधानिक सम्प्रभुता के बीज निहित हैं। आगे चलकर ग्रोशियस, बेन्थम, हॉब्स एवं आस्टिन ने वैधानिक सम्प्रभुता की इस अवधारणा का प्रतिपादन किया।

6. मध्यम वर्ग को महत्त्व (Importance to Middle Class)- अरस्तू के मतानुसार समाज में अत्यधिक सम्पन्नता और अत्यधिक निर्धनता दोनों ही बुरी स्थितियों हैं, जहाँ समाज दो वर्गों में बंटा होता है, वहाँ सोहार्द की कोई भावना देखने को नहीं मिलती है, जब कि सोहार्द के बिना किसी संगठन या समुदाय का गृठन नहीं हो सकता है। अतः अरस्तू मध्यम वर्ग के शासन को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानता है। वह कहता है कि शासन को सफल बनाने के लिए इसमें मध्यम वर्ग की भूमिका को महत्त्व दिया जाना चाहिए। उसके अनुसार मध्यम वर्ग ही ऐसा वर्ग है, जो धनी और निर्धन के मध्य संवाद बनाए रखता है तथा धनी और निर्धन के बीच होने वाले संघर्ष को कम करते हुए एक स्थिर शासन कायम करता है। वह मध्यम वर्ग द्वारा शासित होने वाले राज्य को एक सुरक्षित राज्य मानता है। मैक्सी भी इस मध्यम-वर्गीय शासन को उचित मानता है।

7. मिश्रित संविधान (Mixed Constitution)-अरस्तू ने मिश्रित शासन पद्धति को सर्वोत्तम माना है। वह कहता है कि राजतन्त्र एवं कुलीनतन्त्र उत्कृष्ट शासन-प्रणालियों हैं, लेकिन इन्हें चलाने वाले श्रेष्ठ व्यक्ति कभी उपलब्ध नहीं होते। ऐसी स्थिति में लागू की जाने वाली व्यवस्था ही व्यावहारिक दृष्टि से, सर्वोत्तम शासन व्यवस्था हो सकती है। अरस्तू की धारणा है कि शासन व्यवस्थाएँ चाहे कैसी भी हों, सभी में दोष विद्यमान होते हैं। इन दोषों को दूर करने का सरल उपाय है-एक मिली-जुली या मिश्रित शासन-व्यवस्था लागू करना। इस दृष्टि से सर्वजनतन्त्र (Polity) सर्वोत्तम शासन व्यवस्था है, क्योंकि इसमें लोकतन्त्र और धनिकतन्त्र व्यवस्थाओं का इस प्रकार समन्वय किया गया है कि दोनों के दोषों से बचते हुए, दोनों के गुणों का समावेश हो जाए। आज के समय में भी जापान, ब्रिटेन और नेपाल जैसे राज्यों में लोकतन्त्र और राजतन्त्र व्यवस्थाओं का मिला-जुला रूप हमें देखने को मिलता है। इसी तरह एक दो राज्यों में अध्यक्षात्मक और संसदात्मक व संघात्मक और एकात्मक शासन-पद्धतियों का मिश्रित रूप मौजूद है।

8. संविधानों का वर्गीकरण (Classification of Constitutions)- अरस्तू ने दो सिद्धान्तों या मापदण्डों को अपनाते हुए संविधानों का एक सुन्दर और स्पष्ट वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। यह एक व्यक्ति के शासन को **राजतन्त्र** का नाम देता है, यदि शासन का उद्देश्य सामान्य हित है। जब ऐसा शासक सत्ता का प्रयोग अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की सिद्धि के लिए करने लगता है, तो वह इसे **निरंकुशतन्त्र** का नाम देता है। कुछ सद्गुणी एवं कुलीन लोगों के शासन को वह **कुलीनतन्त्र** कहता है, यदि सत्ता का प्रयोग जन-कल्याण के लिए किया जाता है। लेकिन यदि सत्ता का प्रयोग निजी लाभ के लिए किया जाता है, तो ऐसा शासन **धनिकतन्त्र या अल्पतन्त्र** कहलाता है। इसी तरह जब अनेक व्यक्ति सामान्य हित के लिए शासन करते हैं, तो यह **सर्वजनतन्त्र** और जब शासक अपने स्वार्थो की सिद्धि के लिए इसका प्रयोग करते हैं, तो यह लोकतन्त्र कहलाता है।

9. लोकतन्त्र का समर्थन (Support to Democracy)- यद्यपि अरस्तू को प्लेटो की तरह लोकतन्त्र-विरोधी मान लिया जाता है, क्योंकि उसने संविधानों के अपने वर्गीकरण में लोकतन्त्र को विकृत शासन पद्धतियों की श्रेणी में रखा है, लेकिन फिर भी वह एक प्रकार से लोकतन्त्र का समर्थक ही है, क्योंकि उसने सर्वजनतन्त्र (Polity) नाम की जिस शासन पद्धति को व्यावहारिक दृष्टि से सर्वोत्तम बताया है, वह लोकतन्त्र और धनिकतन्त्र का मिश्रण ही तो है।

10. नागरिकता की व्याख्या (Description of Citizenship) - नागरिकता की अरस्तू द्वारा दी गई परिभाषा तत्कालीन यूनानी नगर-राज्यों की परिस्थितियों के अनुकूल है। उसके अनुसार वही व्यक्ति नागरिक कहलाने का अधिकारी है, जो स्थायी रूप से न्याय एवं राज्य के प्रशासन में तथा राजकीय पदों को ग्रहण करने में भाग लेता है। फिर भी हमें यह अवश्य ही स्वीकार करना होगा कि अरस्तू की नागरिकता की यह परिभाषा आधुनिक नागरिकता को निर्धारित करने में मार्गदर्शक सिद्ध हुई है। वस्तुतः उसने नागरिकता की अपनी अवधारणा के माध्यम से व्यक्ति को राज्य के साथ सम्बद्ध किया है, जिससे कि वह अपने अधिकार एवं दायित्वों का निर्वाह कर सके।

11. मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी (Man is a political animal) : अरस्तू ने मनुष्य को एक राजनीतिक प्राणी मानकर राज्य से उसके सम्बन्ध को अटूट माना है। जब भी विचारकों ने राज्य के अस्तित्व को चुनौती प्रदान करने का प्रयत्न किया तो इसी बृहद वाक्य ने कि मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है राज्य के अस्तित्व को बचाया है। अरस्तू का कथन है- "मनुष्य

स्वाभाविक रूप से एक राजनीतिक प्राणी है जिसका उद्देश्य राज्य का जीवन व्यतीत करना है।"

12. राज्य में स्थिरता को महत्व (Importance to the stability in state): राज्य के विकास का एक सूत्र यह है कि उसमें स्थिरता होनी चाहिए। मानवता का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि जब भी राज्यों ने विकास किया है तो उसके पीछे उनकी स्थिरता ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अरस्तू अपने सम्पूर्ण अध्ययन में राज्य की स्थिरता को अत्यधिक महत्व देता है।

13. सार्वजनिक कल्याण का सिद्धान्त (Theory of general welfare) : अरस्तू प्रथम ऐसा विचारक था जिसने राज्य का वैज्ञानिक उद्देश्य प्रकट किया। उसका विचार था कि सामाजिक, राजनीतिक संस्थाओं का उद्देश्य मनुष्य का कल्याण एवं विकास करना है। राज्य भी एक संगठन है जिसका ध्येय मानवीय जीवन को बेहतर बनाना है। आज भी राज्य का यही उद्देश्य माना जाता है।

14. शिक्षा राज्य का दायित्व (Education is the responsibility of state): अरस्तू को इसलिए भी प्रथम राजनीतिक वैज्ञानिक माना जाता है क्योंकि उसने इस बात की वकालत की कि लोगों को शिक्षित करने का उत्तरदायित्व राज्य का है। शिक्षित व्यक्ति से ही कानूनों का पालन करवाया जा सकता है। इंग्लैण्ड के आदर्शवादी विचारक टी.एच. ग्रीन ने शायद अरस्तू से प्रेरणा प्राप्त करके ही इंग्लैण्ड में राज्य द्वारा शिक्षा प्रदान करने पर बल दिया।

15. संविधानवाद का प्रणेता (Propagator of Constitutionalism) : आज के आधुनिक युग में हम उन व्यवस्थाओं को संविधानवाद के अन्तर्गत अध्ययन एवं विश्लेषण के लिए अपनाते हैं जो संविधान पर आधारित होती है। अरस्तू प्रथम ऐसा विचारक था जिसने विभिन्न प्रकार के संविधानों का वर्णन करके शासन व्यवस्थाओं को वर्गीकृत किया। इस प्रकार अरस्तू को संविधानवाद का प्रणेता माना जा सकता है।

स्पष्ट है कि राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में दिए गए अरस्तू के उपर्युक्त योगदान के आधार पर उसे राजनीति विज्ञान का जन्मदाता (पिता) या 'प्रथम राजनीतिक वैज्ञानिक' कहना सर्वथा उचित है।

Unit- III

3. संत ऑगस्टाइन (354-430 ई.)

[St. Augustine (354 - 430 A.D.)]

जीवन-परिचय एवं रचनाएँ (Life-sketch and Works)

उत्तर- संत ऑगस्टाइन का जीवन परिचय (Life-sketch of St. Augstine): संत ऑगस्टाइन का जन्म उत्तरी अफ्रीका के एक नगर टागास्टे में 354 में हुआ। ऑगस्टाइन एक बुद्धिमान एवं मैधावी छात्र था। उसने कार्थेज में उच्च शिक्षा ग्रहण की। संत ऑगस्टाइन के पिता का नाम पेंट्रिटीयस (Patritius) और माता का नाम मीनिका (Minica) था। ऑगस्टाइन के पिता तो ईसाई नहीं थे लेकिन माता ईसाई थी तथा उस इस ईसाई धर्म का व्यापक प्रभाव था। संत ऑगस्टाइन आरम्भ में ईसाई नहीं थे उन्होंने 33 वर्ष की अवस्था में संत एम्ब्रोस के कहने पर ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। संत एम्ब्रोस मिलान (Milan) के बिशप थे। संत एम्ब्रोस अपनी उच्च शिक्षा के दौरान अनेक सम्प्रदायों के सम्पर्क में रहे लेकिन वे सबसे अधिक ईसाई मत से प्रभावित हुए। 391 ई. में उन्हें हिप्पों का विशप बना दिया गया जहां वे अपनी मृत्यु तक विशप बने रहे। इस बेरान उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की। उनके दो ग्रन्थ सबसे अधिक महत्वपूर्ण माने जाते हैं। प्रथम ग्रन्य 400 ई. में उनकी 'आत्मकवा' (Confessions) के रूप में प्रकाशित हुआ। इसके बाद 412-427 तक उन्होंने अपने सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्य 'De Civitate Dei' की रचना की जिसे 'The City of God' के नाम में भी जाना जाता है। 430 ई. में हिप्पो के बिशप के पद पर ही 76 वर्ष की अवस्था में इस महान् विचारक हो मृत्यु हुई है।

संत ऑगस्टाइन की रचना— "सिटी ऑफ गॉड" (The works of St. Augstine-The City of God) :

सिटी ऑफ गॉड की विषय-वस्तु (Subject-Matter of The City of God)

इस महान् ग्रन्थ में कुल 22 अध्याय हैं। इसके प्रथम 10 अध्यायों में यह प्रयास किया गया है कि रोमन साम्राज्य के पतन के लिए ईसाई धर्म का उदय एवं इसका प्रचार उत्तरदायी नहीं है। इसमें यह भी स्पष्ट किया गया है कि राज्य का अस्तित्व, उसकी सर्वोच्चता, उत्थान एवं पतन दैवी-देवताओं की पूजा-आराधना पर आधारित नहीं है। इन दस अध्यायों में से प्रथम पाँच में अन्य मतों का खण्डन तथा आगे पाँच अध्यायों में ईश्वर को सर्वशक्तिशाली बताया गया है। इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि सभी कुछ ईश्वर की इच्छानुसार ही घटित हो रहा है। सभी मनुष्य, वस्तुएँ आदि ईश्वर की इच्छानुसार ही गतिशील हैं। ऑगस्टाइन का विचार है कि रोमन साम्राज्य का पतन ईश्वर की इच्छा का परिणाम है क्योंकि इसके पश्चात् ही रोम में ईसाई मत का प्रचार-प्रसार आरम्भ हुआ है। अतः रोम के पतन एवं विघटन से दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार से प्रथम 10 अध्यायों में ईसाई धर्म को आलोचकों से बचाने के उपरान्त अगले 12 अध्यायों में ऑगस्टान ने ईसाई धर्म की मान्यताओं, लौकिक सत्ता पर ईसाई धर्म का प्रभाव, राज्य का दायित्व, न्याय सम्बन्धी धारणा आदि को प्रस्तुत किया है।

संत ऑगस्टाइन के राजनीतिक विचार (Political Ideas of St. Augustine)

प्रश्न — संत ऑगस्टाइन के मुख्य राजनीतिक विचारों की विवेचना कीजिए। (Discuss the main political ideas of St. Augustine.)

अथवा

राजदर्शन को संत ऑगस्टाइन की देन की विवेचना कीजिए। (Discuss St. Augustine's Contributions to political thought)

अथवा

राज्य एवं चर्च के मध्य सम्बन्धों पर संत ऑगस्टाइन के विचारों की विवेचना कीजिए। (Discuss St. Augustine's views on the relation between State and Church.)

अथवा

संत ऑगस्टाइन के राज्य एवं सरकार के बारे में विचार क्या वे, बताइये ? (Discuss St. Augustine's views on State and Government?)

उत्तर- संत ऑगस्टाइन के राजनीतिक विचारों का वर्णन कुछ इस प्रकार है-

1. दो नगरों का सिद्धान्त (Theory of two cities): ऑगस्टाइन को एक राजनीतिक विचारक कहने की अपेक्षा एक धर्म उपदेशक कहना अधिक उपयुक्त होगा। उसका उद्देश्य एक ऐसी जीवन प्रणाली की खोज करना था जिससे मानव जाति का दिशा-निर्देशन किया जा सके। ऑगस्टाइन के सम्पूर्ण विचारों का केन्द्र उसका दो राज्यों का सिद्धान्त है। इस सन्दर्भ में फोस्टर का कहना है कि "राजनीतिक विचारधाराओं के सन्दर्भ में संत ऑगस्टाइन के सबसे महत्वपूर्ण विचार दो राज्यों की धारणा में केन्द्रित हैं, सांसारिक राज्य और ईस्वरीय राज्य।"

संत ऑगस्टाइन सांसारिक राज्यों को नाशवान मानता है। ऑगस्टाइन का तर्क था कि रोम का पतन इसलिए हुआ क्योंकि वह एक सांसारिक राज्य था। ऑगस्टाइन का मत था कि सांसारिक राज्य की आधारशिला स्वार्थ तथा ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध रखी जाती है। ईश्वरीय राज्य में स्वार्थ नहीं होता। सांसारिक राज्य स्वयं को महामंडित करता है जबकि ईश्वरीय राज्य ईश्वर का सम्मान करता है। ऑगस्टाइन का विचार है कि पूरा इतिहास इन दो राज्यों के मध्य संघर्ष का इतिहास है जिसमें ईश्वरीय राज्य की विजय होती है। इस प्रकार से ऑगस्टाइन ईश्वरीय राज्य को फरिश्ते द्वारा उत्पन्न राज्य कहता है तथा सांसारिक राज्य को शैतान द्वारा उत्पन्न राज्य का नाम देता है। ईश्वरीय राज्य ईसामसीह (Christ) का राज्य है। इस प्रकार से ईश्वरीय राज्य चर्च है।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि ये दोनों राज्य कौन से हैं। ऑगस्टाइन का कहना है कि इन राज्यों की पहचान करना बहुत कठिन है। विचारकों का मत है कि ऑगस्टाइन वास्तव में राज्यों की नहीं अपितु दो मानवीय समुदायों की बात कर रहा है। उसका उद्देश्य तो लोगों की चर्च एवं ईसामसीह के प्रति आस्था उत्पन्न करके इस सांसारिक राज्यों को ही ईश्वरीय राज्यों में परिवर्तित होने के लिए प्रेरित करना है।

(i) "ईश्वरीय राज्य" की रचना की पृष्ठभूमि (Background of the City of God) : संत ऑगस्टाइन एक महान् लेखक था। उसका यह ग्रन्य अत्यधिक महत्वपूर्ण है। उसके राजनीतिक विचारों को समझने के लिए इसका अध्ययन एवं विश्लेषण आवश्यक है। इसकी रचना के पीछे ऑगस्टाइन का विशेष उद्देश्य था। तत्कालीन समय में रोमन साम्राज्य पर अनेक बर्बर जातियों के आक्रमण हो रहे थे। इन आक्रमणों से रोमन साम्राज्य को बचाने की हिम्मत रोमन शासकों में नहीं थी। रोम को ट्यूटोनिकों तथा गोथों ने नष्ट कर डाला था। ऑगस्टाइन ने तर्क दिया कि यदि रोमन शासक ईसाई मत को अंगीकार कर लेते तथा इसके सांसारिक रूप से इसे ईश्वरीय रूप की ओर ले जाते तो इसका विनाश नहीं होता।

(ii) "ईश्वरीय राज्य" का उद्देश्य (Objective of City of God): ऑगस्टाइन का ईश्वरीय राज्य की रचना के पीछे जो उद्देश्य था उसको निम्न चार रूपों में बांटा जा सकता है-

(क) ईसाई धर्म को इसके आलोचकों से बचाना।

(ख) ईसाई धर्म को सर्वोच्च प्रमाणित करना।

(ग) रोमन साम्राज्य के पतन के वास्तविक कारण स्पष्ट करना।

(घ) संसार में ईसाई मत को स्थापित करना।

(iii) ईश्वरीय राज्य की प्रकृति एवं सदस्यता (Nature and Membership of City of God) : ईश्वरीय राज्य की प्रकृति

ऐसी है जिसमें ईश्वर, देवदूतों, आत्माओं तथा मानव शामिल हैं। इसकी सदस्यता वही प्राप्त कर सकता है जिसमें ईश्वर के प्रति आस्था हो। इसके लिए चर्च का सदस्य बनना और उसकी सर्वोच्चता को स्वीकार करना अनिवार्य है। अतः इस राज्य की सदस्यता केवल उन्हें मिल सकती है जो ईसाई धर्म को मानते हैं।

(iv) ईश्वरीय राज्य का आधार (Basis of City of God): ईश्वरीय राज्य का आधार न्याय है। इसमें वही व्यक्ति होते हैं जिनमें न्याय भावना का वास होता है। जो भी न्याय का परित्याग करेगा वही उसकी सदस्यता से वंचित हो जाएगा।

(v) ईश्वरीय राज्य तथा चर्च (Church and the City of God)— यद्यपि चर्च को ईश्वरीय राज्य का समानार्थक नहीं माना गया है लेकिन क्योंकि ईश्वरीय राज्य अदृश्य है अतः चर्च ही एक ऐसी संस्था है जो ईश्वरीय राज्य की स्थापना करती है। चर्च एक सर्वोपरि संगठन है तथा ईश्वर की आज्ञाओं को क्रियान्वित करने वाली सर्वोच्च सत्ता है।

(vi) प्रेम के दो रूप (Two aspects of love): ऑगस्टाइन का विचार है कि व्यक्ति के अन्दर दो प्रकार का प्रेम होता है। एक स्वयं के प्रति और दूसरा ईश्वर के प्रति। ईश्वरीय राज्य की स्थापना के लिए स्वयं के प्रति प्रेम का परित्याग करके ईश्वर के प्रति प्रेम स्थापित करना आवश्यक है।

2. राज्य के सम्बन्ध में विचार (Views regarding state): राज्य के सम्बन्ध में संत ऑगस्टाइन के विचार ईसाईयत तथा अरस्तू के विचारों का समन्यय है। उसने अपने दर्शन की कला से यूनानी एवं रोमन विचारधाराओं को मिला दिया है। ऑगस्टाइन का विचार है कि मनुष्य की बुरी प्रवृतियों के कारण ही राज्य का निर्माण किया है। लेकिन राज्य का निर्माण ईश्वर ने इसलिए किया जिससे कि मनुष्य के पापों से छुटाकारा दिलाया जा सके। अतः राज्य ईश्वरीय संस्था है और इस ईश्वरीय संस्था का पालन किया जाना चाहिए।

संत ऑगस्टाइन के विचारों के परिणामस्वरूप दो प्रकार की सत्ताओं का अस्तित्व स्थापित हुआ। एक शासक की सत्ता तथा दूसरी चर्च की सत्ता।

संत ऑगस्टाइन ने शासक की धार्मिक शक्ति को उससे अलग उसे चर्च में निहित कर दिया। ऑगस्टाइन का विचार था कि व्यक्ति अपने मोक्ष के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए चर्च के अधीन है तथा सांसारिक सुखों को प्राप्त करने के लिए शासकों के अधीन है। ऑगस्टाइन का विचार था कि व्यक्ति को वर्तमान लौकिक राज्य की सत्ता का सम्मान एवं पालन इसलिए करना चाहिए क्योंकि यह शान्ति एवं व्यवस्था बनाए रखता है तथा सम्पत्ति की सुरक्षा करता है।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि चर्च एवं राज्य की सत्ता में से श्रेष्ठ कौन है? ऑगस्टाइन ने वर्तमान राज्य को चर्च का एक सांसारिक भाग बताया। इस राज्य का उद्देश्य न्याय की स्थापना करना है। इस राज्य के पीछे एक दैवीय सत्ता है जो इसके चरित्र का निर्माण करती है। मनुष्य को राज्य की आज्ञा का पालन करना चाहिए क्योंकि यह दैवीय उद्देश्य की स्थापना के लिए कार्य करता है। हमें राज्य की आज्ञा का पालन केवल इसलिए नहीं करना चाहिए कि यह शान्ति और व्यवस्था बनाए रखता है अथवा हमारी सम्पत्ति की रक्षा करता है। इस प्रकार से संत ऑगस्टाइन ने राज्य के भौतिक उद्देश्य को नैतिक उद्देश्य में परिवर्तित कर दिया जिसका कार्य नागरिकों के लिए भौतिक सुविधाएँ जुटाना ही नहीं है अपितु उनका नैतिक विकास करना भी है।

इस प्रकार से ऑगस्टाइन राज्य को एक उपयोगी एवं आवश्यक संस्था मानता है। राज्य व्यक्ति को वह शान्ति की परिस्थितियाँ प्रदान करता है जिनकी ईश्वर अपेक्षा करता है। इस प्रकार से राज्य ईश्वर की इच्छाओं को क्रियान्वित करने का यंत्र है।

सैबाइन ने इस सन्दर्भ में कहा है कि "राज्य एक ईसाई राज्य होना चाहिए जो समुदाय के लिए कार्य करे, जिसमें एक सामान्य ईसाई मत का सद्गुण हो, एक ऐसे जीवन का प्रबन्ध करे जिसमें आध्यात्मिक हित स्थापित रहे, इन सब हितों के अतिरिक्त मानवीय मोक्ष की पूर्ति करे और विश्वास की शुद्धता को कायम रखे।" ।

संत ऑगस्टाइन के राज्य सम्बन्धी विचारों का विश्लेषण इस प्रकार है-

(i) संत ऑगस्टाइन के राज्य सम्बन्धी विचार ईसाईयत के सिद्धान्तों पर आधारित हैं।

(ii) ईश्वर ने मनुष्य की बुरी एवं पाशविक प्रवृतियों के उपचार के लिए राज्य का निर्माण किया।

(iii) राज्य एक दैवीय संस्था है।

(iv) प्रत्येक व्यक्ति को राज्य की आज्ञाओं का पालन करना चाहिए।

(v) संसार में दो प्रकार के राज्य होते हैं- सांसारिक राज्य तथा ईश्वरीय राज्य

(vi) व्यक्ति पर दो सत्ताओं का नियन्त्रण होता है-शासकीय सत्ता तथा चर्च की सत्ता।

(vii) दोनों सत्ताओं पर परस्पर विरोध होने की अवस्था में व्यक्ति को चर्च की सत्ता को स्वीकार करना चाहिए।

(viii) व्यक्ति को शासकीय सत्ता का विरोध करने का अधिकार नहीं है क्योंकि राज्य का निर्माण ईश्वर के द्वारा किया गया है लेकिन राज्य चर्च के सिद्धान्तों के अनुरूप कार्य नहीं करता तो व्यक्ति को विरोध का अधिकार है।

(ix) राज्य का आधार न्याय होता है।

(x) राज्य शान्ति एवं व्यवस्था बनाए रखता है तथा सम्पत्ति की सुरक्षा करता है। इसके साथ ही राज्य लोगों में ईश्वर के प्रति आस्था स्थापित करता है। अतः राज्य का उद्देश्य भौतिक एवं नैतिक, दोनों है।

(xi) राज्य तथा व्यक्ति का सम्बन्ध आंगिक (Organic) नहीं अपितु भावनात्मक (Psychological) है।

3. चर्च के सम्बन्ध में विचार (Views regarding Church): ऑगस्टाइन को उसके चर्च सम्बन्धी विचारों के लिए जाना जाता है। उसने चर्च को एक ऐसी संस्था माना है जो व्यक्तियों का इस सांसारिक जगत में मोक्ष की प्राप्ति के लिए मार्गदर्शन करती है। मोक्ष एक अमूर्त अवधारणा है तथा उसका साकार रूप चर्च है। ऑगस्टाइन का विचार है कि राज्य चर्च का केवल एक भाग है जो अपने कार्य करने के साथ-साथ चर्च के कार्य भी सम्पन्न करता है। उसका विचार है कि चर्च ने ही सम्पूर्ण मानवता की प्रभावित किया है।

4. न्याय के सम्बन्ध में विचार (Views regarding Justice): ऑगस्टाइन ने न्याय को एक नैतिक तथा धार्मिक अवधारणा माना है। उसके अनुसार न्याय राज्य का तत्व नहीं है। यद्यपि यह राज्य में निवास करता है बल्कि यह चर्च का तत्व है क्योंकि चर्च के द्वारा न्याय की स्थापना की जाती है। फोस्टर ने ऑगस्टाइन के न्याय सम्बन्धी विचारों को व्यक्त करते हुए लिखा है- "न्याय आदेश की अनुपालना है। प्रत्येक आदेश अपने सदस्यों को कुछ कर्त्तव्य एवं दायित्व प्रदान करता है, न्याय उस आदेश की अनुपालना में है तथा उन कर्त्तव्यों तथा दायित्वों के निभाने एवं पालन करने में है। यह आदेश किसी परिवार अथवा राज्य का हो तकता है, ऑगस्टाइन का मत है कि सम्पूर्ण न्याय एक सार्वभौमिक समाज में ही सम्भव है यह एक ऐसा समाज है जिसके सभी सदस्य ईश्वर के अधीन है।"

इस प्रकार से ऑगस्टाइन कर्त्तव्यों पर बल देते हुए प्लेटो के नजदीक आ जाता है। लेकिन दोनों में अन्तर यह है कि प्लेटो न्याय को केवल नैतिक आधार प्रदान करता है जबकि ऑगस्टाइन न्याय को धार्मिक आधार प्रदान करता है।

5. दासता सम्बन्धी विचार (Views regarding slavery) — संत ऑगस्टाइन ने अरस्तू के समान ही दास-प्रथा का समर्थन किया है। ऑगस्टाइन ने दासता को मनुष्य के द्वारा किए गये पापों का परिणाम माना है। उसका विचार है कि दासों को अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिए अपने मालिकों की सेवा करनी चाहिए। यदि दास अपनी इच्छा से अपने मालिकों की सेवा करेंगे तो वे दास रहते हुए अपने आपको स्वतंत्र समझेंगे। यद्यपि ऑगस्टाइन के विचार न केवल मानवता के विरुद्ध हैं बल्कि ईसाईयत के सिद्धान्तों के भी विरुद्ध है जिसमें स्पष्ट किया गया है कि व्यक्ति के पाप एक निश्चित समय (सात वर्ष) के बाद समाप्त हो जाते हैं। ऑगस्टाइन दासता को औचित्य प्रदान करने में अरस्तू के इस विचार से भी सहमत नहीं है कि दासता प्राकृतिक होती है क्योंकि प्रकृक्ति ने कुछ मनुष्यों में बुद्धि एवं विवेक नहीं दिया है अतः उन्हें दास समझा जाना चाहिए। ऑगस्टाइन का कथन है कि "मनुष्य की उत्पत्ति ईश्वर की इच्छा का परिणाम है, उसे अतार्किक प्राणियों, पशुओं का मालिक

बनाया गया है न कि अपने साथियों का।"

6. सम्पत्ति सम्बन्धी विचार (Views regarding property)— ऑगस्टाइन अरस्तू के समान ही व्यक्तिगत सम्पत्ति का समर्थन करता है, लेकिन यह अरस्तू की इस धारणा से सहमत नहीं है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति नैतिक एवं प्राकृतिक होती है। ऑगस्टाइन ने व्यक्तिगत सम्पत्ति को परम्परागत माना है। उसका विचार था कि सम्पत्ति का अधिकार राज्य के उदय का परिणाम है। राज्य ही सम्पत्ति के परम्परागत अधिकार को मान्यता प्रदान करके इसकी सुरक्षा करता है। ऑगस्टाइन अपने सम्पत्ति सम्बन्धी विचारों में साम्राज्य भलाई की अवधारणा को भी ध्यान में रखता है। उसका विचार है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार मनुष्य के इस स्वभाविक अधिकार का उल्लंघन नहीं कर सकता कि इस पृथ्वी ने सभी को समान रूप से उपभोग का अधिकार प्रदान किया है। अतः व्यक्तिगत सम्पत्ति का अभिप्राय लोगों को उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने से रोकना कदापि नहीं है। यद्यपि ऑगस्टाइन इस सन्दर्भ में सामूहिक स्वामित्व के प्रश्न को इस आधार पर ठुकरा देता है कि इससे हिंसा तथा मतभेद उत्पन्न हो सकते हैं लेकिन वह सामूहिक उपभोग को अवश्य स्वीकार करता है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation)

ऑगस्टाइन के विचारों की आलोचना निम्न प्रकार से की जा सकती है-

1. ऑगस्टाइन को एक राजनीतिक विचारक नहीं कहा जा सकता। वह हिप्पो का बिशप था और संत एम्ब्रोज का शिष्य था। वह एक धार्मिक विचारक था जिसका उद्देश्य ईसाई मत का प्रचार करना था।

2. राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ऑगस्टाइन ने ईसाई ग्रन्थों को आधार माना है। ईसाई ग्रन्थों की प्रमाणिकता पर संदेह व्यक्त किया जाता है तथा इसे वर्तमान में स्वीकार नहीं किया जाता।

3. ऑगस्टाइन राज्य को चर्च के अधीन मानता है जबकि राज्य को वर्तमान में सर्वोच्च संस्था माना जाता है।

4. ऑगस्टाइन ने दास-प्रथा का समर्थन करके मानवता के प्रति अत्याचार किया है। आधुनिक समय में दास-प्रथा को गैर-कानूनी घोषित किया गया है।

5. ऑगस्टाइन कोई सुधारवादी नहीं अपितु रूढ़िवादी विचारक था। उसने तत्कालीन व्यवस्था में सुधार के कोई उपाय नहीं दिए। उसने असफल राजतंत्रीय व्यवस्थाओं का कोई विकल्प प्रस्तुत नहीं किया।

6. ऑगस्टाइन में मौलिकता का अभाव है। उसका सम्पूर्ण चिन्तन प्राचीन रोमन व्यवस्था तथा ईसाईयत के सिद्धान्तों का मिश्रण मात्र है।

7. ऑगस्टाइन के चिन्तन में परस्पर विरोधाभास है। एक ओर तो वह कहता है कि सभी ईश्वर की संतान हैं तथा दूसरी ओर असमानता पर आधारित दास-प्रथा का सम्मान करता है। इसी प्रकार का विरोधाभास हमें उसके सम्पत्ति सम्बन्धी विचारों में भी देखने को मिलता है। एक ओर तो यह कहता है कि सम्पूर्ण धरती और चीजों का रचयिता ईश्वर है और इस पर सभी का अधिकार है तो दूसरी तरफ वह व्यक्तिगत सम्पत्ति को परम्परागत मानकर इसका समर्थन करता है।

8. ऑगस्टाइन ने राज्य को एक दैवीय संस्था माना है जबकि राज्य एक दैवीय नहीं बल्कि राजनीतिक संस्था है।

9. ऑगस्टाइन व्यक्ति और राज्य के मध्य धार्मिक, भावनात्मक एवं मनोविज्ञानिक सम्बन्ध मानता है जबकि राज्य और व्यक्ति के मध्य राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक सम्बन्ध है।

10. ऑगस्टाइन न्याय की धार्मिक व्याख्या करता है। उसके अनुसार न्याय चर्च के आदेशों की अनुपालना में निहित है। न्याय एक धार्मिक अवधारणा नहीं बल्कि कानूनी अवधारणा है।

11. ऑगस्टाइन का दो नगरों अथवा राज्यों का सिद्धान्त भ्रमित है। यह रोम को ही सांसारिक राज्य भी मानता है तथा बाद में

उसे ही ईश्वरीय राज्य मान लेता है।

★★----------★★

4. संत थामस एक्विनास (1227-1274 ई.)

[St. Thomas Acquinas (1227-1274 A.D.)]

एक्विनास की रचनाएँ(Works of Acquinasa)

एक्विनास ने अपने जीवन काल में लगभग 30 ग्रन्थों की रचना की है। उनमें कुछ प्रमुख ग्रन्थ इस प्रकार से हैं-

1. सुम्मा थियोलोजिका (Summa Theologica)

2. कमेन्ट्रिज ऑन द पालिटिक्स ऑफ एरिसटोटल (Commentaries on the politics of Aristotle)

3. द रूल ऑफ प्रिंसेज (The Rule of Princes)

4. सुम्मा कन्ट्रा जेन्टाइल्स (Summa Contra Gentiles)

5. डी रेजीमीन प्रिंसीपम (De Regimine Principum-Incomplete)

संत थामस एक्विनास की रचनाओं में अरस्तू तथा ईसाईयत के सिद्धान्तों के मध्य समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विचार (Views regarding the Origin of the State)

प्रश्न— संत थामस एक्विनास के सन्दर्भ में राज्य की उत्पत्ति के बारे में मध्यकालीन सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।

(Discuss the medeival theory of the origin of the state with reference to the ideas of St. Thomas Acquinas.)

उत्तर- राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मध्य युग में जो सिद्धान्त प्रचलित था, उसमें हमें रोमन कानून एवं परम्पराएँ, अरस्तू के विचार तथा ईसाई धर्म प्रचारकों के विचारों का मिश्रण देखने को मिलता है। रोमन कानून एवं परम्पराओं के अनुसार राज्य 'समझौते का परिणाम' (Result of Contract) है। इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य के निर्माण से पूर्व, प्राकृतिक अवस्था में कोई व्यवस्था प्रचलित नहीं थी। शक्तिशाली वर्ग कमजोर वर्ग के हितों को हड़प जाता था। जंगल का कानून लागू था जिसमें प्रत्येक शक्तिशाली कमजोर को समाप्त एवं आतंकित करने पर तुला हुआ था। इस व्यवस्था से बाहर आने के लिए लोगों ने शासक वर्ग से समझौता (Contract) किया कि वह उनकी सुरक्षा करेगा तथा इसके बदले में उसकी आज्ञाओं का पालन करेंगे।

मध्यकाल के इस सिद्धान्त में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने का श्रेय संत थामस एक्विनास को दिया जाता है। संत थामस एक्विनास ने यह कहकर कि राज्य व्यक्ति के पापों का परिणाम नहीं है अपितु मनुष्य की सामाजिक भावना का प्रतिबिंब है। राज्य की उत्पत्ति के संबंध में नए तरह के विचार दिए। एक्विनास मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी मानते हुए कहते हैं कि- "मनुष्य स्वभाव से एक सामाजिक प्राणी है और इस प्रकार से स्वभाविक रूप से सामाजिक जीवन व्यतीत करता है।" इस प्रकार से राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक्विनास अरस्तू के अधिक निकट है।

इस प्रकार से संत थामस एक्विनास ने राज्य की अनिवार्यता तथा सर्वोच्चता को पुनः स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने राज्य को एक स्वभाविक संस्था बताया। यह मनुष्य के पाप का फल नहीं था। राज्य रूपी राजनीतिक संगठन

के द्वारा जो प्रतिबन्ध अपने सदस्यों के व्यवहार पर लगाए जाते हैं, वे नागरिकों के नैतिक विकास के लिए आवश्यक हैं। इस प्रकार से संत एक्विनास ने संत ऑगस्टाइन की इस धारणा को मानने से इन्कार कर दिया कि मनुष्य का मनुष्य पर स्वभाविक अधिकार है।

एक्विनास ने राज्य को एक कृत्रिम, पाप का फल तथा परम्परागत संस्था न मानकर एक प्राकृतिक संस्था माना है। अपने पक्ष में एक्विनास निम्न तर्क प्रस्तुत करता है-

(i) मनुष्य स्वभाव से एक सामाजिक प्राणी है तथा वह आदिकाल से स्वभाविक रूप से समाज में रहता आया है। एक्विनास अरस्तू के तर्क की पुष्टि करते हुए आगे कहता है कि समाज में एक मुखिया अवश्य रहा होगा क्योंकि मुखिया के अभाव में समाज की व्यवस्था का संचालन नहीं हो सकता। यह मुखिया लोगों के कल्याण के कार्य करता था तथा समाज की व्यवस्था को चलाता था।

(ii) समाज की शक्ति का केन्द्र यही मुखिया था। यदि हम इस तथ्य को स्वीकार कर लें कि मनुष्य के कल्याण के लिए मनुष्य पर मनुष्य का अधिकार था तो राज्य का अस्तित्व मनुष्य के लिए अनिवार्य हो जाता है। इस प्रकार से स्पष्ट हो जाता है कि जो शासक वर्ग में थे वे अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक कुशल, गुणी, ज्ञानवान, प्रतिभाशाली तथा सद्गुणी थे। ये अपने से कम कुशल लोगों पर स्वभाविक रूप से शासन करते थे। इन शासकों का कार्य निम्न श्रेणी के लोगों के जीवन को सुचारू रूप से चलाना था। यह एक स्वभाविक प्रकृति है तथा राज्य भी एक स्वभाविक एवं नैतिक संस्था है।

(iii) राज्य इसलिए भी एक प्राकृतिक तथा अनिवार्य संस्था है क्योंकि कोई भी अपने आप में आत्मनिर्भर नहीं है। व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य लोगों की मदद की आवश्यकता होती है। एक्विनास अरस्तू के समान ही इस बात को मानता है कि आत्मनिर्भर जीवन यापन करने के लिए समाज को अनेक वर्गों एवं व्यवसायों की आवश्यकता होती है जो परस्पर हितों की पूर्ति करते हुए कार्य करते हैं। अतः स्पष्ट है कि राज्य तथा समाज सभी के लिए अनिवार्य है।

(iv) निश्चित रूप से यह पाप अथवा समझौते का परिणाम नहीं है। संत थामस एक्विनास राज्य को एक प्राकृतिक संस्था मानने के साथ ही इसमें ईश्वर के योगदान को भी स्वीकार करता है— यही पर उसने अरस्तू को ईसाईयत के साथ मिला दिया है। एक्विनास का कहना है कि मनुष्य की सामाजिक भावना ईश्वर के आदेश का परिणाम है। मनुष्य के अन्दर साथ रहने की भावना को ईश्वर ने उत्पन्न किया है। इस प्रकार से राजनीति सत्ता का स्रोत ईश्वर है।

संत थामस एक्विनास के राजनीतिक विचार *अथवा* राज्य एवं सरकार के सम्बन्ध में विचार

प्रश्न — संत थामस एक्विनास के राजनीतिक विचारों की विवेचना कीजिए।

(Discuss the political ideas of St. Thomas Acquinas.)

अथवा

सरकार की प्रकृति एवं उसके कार्यों के बारे में थामस एक्विनास के विचारों का परीक्षण कीजिए। राज्य तथा चर्च के मध्य सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।

(Examine the views of St. Thomas Acquinas on the nature and functions of government. Discuss the relation between State and Church.)

अथवा

एक्विनास के कानूनों के वर्गीकरण की समीक्षा कीजिए। (Examine the classification of Law of Acquinas.)

अथवा

कानून पर संत थामस एक्विनास के विचारों का परीक्षण कीजिए। (Examine St. Thomas Acquinas, Views on Laws.)

अथवा

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियों लिखिए-

(अ) सरकार पर संत एक्विनास के विचार।

(ब) संत एक्विनास के कानून के सिद्धान्त।

उत्तर- संत थामस एक्विनास को मध्यकाल के उस विचारक के रूप में जाना जाता है जिसने सम्पूर्ण मध्यकाल के चिन्तन को एकता प्रदान की। उसने स्थापित विभिन्न विचारधाराओं के मध्य समन्वय स्थापिन किया तथा आने वाले विचारकों के सामने ऐसा क्रमबद्ध चिन्तन प्रस्तुत किया जिसके आधार पर उन्होंने अपने चिन्तन को स्थापित किया। उसे यूनान एवं रोमन विचारधाराओं को एकीकृत करने का सम्मान प्राप्त है।

इस सन्दर्भ में एक्विनास को अरस्तू से भी महान् माना जा सकता है। जहां अरस्तू के राजनीतिक विचार केवल यूनान के नगर राज्यों तक ही सीमित थे वहीं एक्विनास एक सार्वभौमिक समाज एवं राज्य की कल्पना करता है।

संत थामस एक्विनास के राजनीतिक विचारों का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है-

1. राज्य सम्बन्धी विचार (Views regarding State): अरस्तू के समान ही एक्विनास ने राज्य को एक प्राकृतिक संस्था माना है। उसने अरस्तू के समान ही मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी माना है। उसने ईसाईयत के इस विचार को ठुकरा दिया है कि ईश्वर ने राज्य का निर्माण व्यक्तियों के पापों के उपचार के लिए किया है। एक्विनास ने राज्य को एक आवश्यक बुराई न मानकर मानवीय विकास एवं कल्याण के लिए आवश्यक माना है। उसके अनुसार राज्य व्यक्ति के अन्दर स्थापित बुराईयों को समाप्त करने के लिए तथा उसके विकास में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए आवश्यक है।

एक्विनास अपने राज्य सम्बन्धी विचार के लिए न केवल अरस्तू से प्रभावित है अपितु यह संत पाल के दैवीय सिद्धान्त को भी स्वीकार करता है और अन्त में अरस्तू तथा संतपाल के विचारों का समन्वय प्रस्तुत करता है। इस सन्दर्भ में गैटेल का कथन है कि उसकी रचनाओं में राजनीति पुनः एक विज्ञान के रूप में जीवर्तित हुई, यद्यपि उसका स्वरूप पूर्णतः मध्यकालीन था। वास्तव में उसने अरस्तू तथा सिसरो और ऑगस्टाइन तथा बाईबिल के सिद्धान्तों को मिला दिया।

एक्विनास ने राज्य के कल्याणकारी स्वरूप को स्थापित किया है। मैक्सी का कथन है- "शासक का हर्वोच्य दायित्व अपने लोगों का कल्याण है, इस दायित्व को निमाने में उसे सबसे महान् प्रसन्नता होगी, ऐसा काने पर लोग उससे स्नेह करेंगे और उसे शासन शक्ति में रखने की इच्छा रखेंगे।"

संत थामस एक्विनास ने राज्य के लिए अनेक प्रकार के कार्यों का वर्णन किया है। इससे यही स्पष्ट होता है कि एक्विनास का विचार एक ऐसा राज्य स्थापित करता है जिसमें राज्य के उद्देश्य अच्छे हों। अच्छे उद्देश्य से अभिप्राय एक्विनास का मोक्ष प्राप्त करने से है। मोक्ष प्राप्त करने के उद्देश्य से व्यक्ति का एक अच्छा ईसाई बनना आवश्यक है। राज्य व्यक्ति के मोक्ष के लक्ष्यों को प्राप्त करने का यन्त्र है तथा चर्च इस यन्त्र का मार्ग-निर्देशन करने वाली सत्ता है। चर्च धर्म सत्ता का प्रतीक है तो राज्य लौकिक सत्ता का प्रतीक है।

2. सरकार के सम्बन्ध में विचार (Views regarding Government) — एक्विनास पर अरस्तू द्वारा वर्णित शासन प्रणालियों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उसने अरस्तू के समान ही छः प्रकार की सरकारों का वर्णन किया है, जो निम्न प्रकार से हैं-

(i) राजतंत्र (Monarchy)। (II) कुलीनतंत्र (Aristocracy)

(III) तानाशाही (Tyranny)। (IV) मध्यमवर्गीय लोकतंत्र (Polity)

(V) अल्पतंत्र (Oligarchy)। (VI) लोकतंत्र (Democracy)

लेकिन शासन का उत्तम रूप कौन सा है? इसको लेकर अरस्तू से एक्विनास के विचार भिन्न हैं। जहाँ अरस्तू मध्यमवर्गीय लोकतंत्र (Polity) को शासन का सबसे अच्छा रूप बताता है, वहीं एक्विनास राजतंत्र को शासन का सबसे उत्तम रूप मानता है। उसका विचार है कि राजतंत्र यद्यपि एक व्यक्ति का शासन होता है लेकिन उसमें जन-कल्याण एवं कानून की भावना निहित होती है।

एक्विनास राजतंत्र के साथ-साथ जनमत को भी महत्व प्रदान करता है। उसका वैद्यानिक सरकार से अभिप्राय एक ऐसी सरकार से है जिसमें लोगों का विश्वास शासक वर्ग में हो। जनमत को महत्व देने के परिणामस्वरूप यह नहीं मान लेना चाहिए कि वह लोकतंत्र का समर्थक था। वह प्रजातंत्र की अपेक्षा राजतंत्र को निम्न आधारों पर समर्थन प्रदान करता है-

(i) जिस प्रकार से सम्पूर्ण विश्व में ईश्वर की एकमात्र सत्ता है। सम्पूर्ण शरीर दिल पर आधारित होता है। सभी मधुमक्खियों में रानी मक्खी का साम्राज्य होता है। ऐसे ही राज्य में एक व्यक्ति का शासन होना चाहिए जो केवल राजतंत्र में ही सम्भव है।

(II) राज्य का उद्देश्य एकता तथा जन-कल्याण स्थापित करना है। यह तभी सम्भव है जब राजतंत्रीय व्यवस्था स्थापित हो।

(III) लोकतंत्र में गुटबन्दी होती है जो एकता के लिए खतरा उत्पन्न करती है। इससे राज्य में फूट, कलह, विद्रोह का वातावरण उत्पन्न होता है। जनमत पर आधारित राजतंत्र में शान्ति एवं सद्भाव होता है।

(IV) राजतंत्रों ने ही इतिहास में यह प्रमाणित किया है कि वे एकता, शान्ति तथा सुरक्षा का वातावरण रख सकते हैं।

(V) राजतंत्र पर यह दोषारोपण ठीक नहीं है कि यह तानाशाही में परिवर्तित होता जाता है। लोकतंत्र में राजतंत्र की अपेक्षा तानाशाही स्वरूप धारण करने की सम्भावना अधिक रहती है।

(अ) सरकार के कार्य (Functions of the Government): एक्विनास ने सरकार के अनेक कार्य बताएँ हैं जिनका वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है-

(i) प्रजा का पालन करना सरकार का दायित्व है।

(II) आवागमन को सुलभ बनाने के लिए सड़क मार्गों का निर्माण करना।

(III) लेन-देन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मुद्रा का निर्माण एवं संचालन करना।

(IV) कानून के शासन की स्थापना करना तथा प्रजा से कानून का पालन करवाना।

(V) व्यापार को नियंत्रण में रखना।

(VI) गरीबों को सुरक्षा प्रदान करना।

(VII) राज्य की बाह्य आक्रमण से सुरक्षा करना।

(VIII) असहाय नागरिकों की आर्थिक सहायता करे।

(IX) लोगों के काम का प्रबन्ध करे।

(X) न्याय की स्थापना करे।

(XI) लोक सेवाओं की व्यवस्था करे।

(ब) शासक के दायित्व (Responsibility of Ruler): एक्विनास ने शासक के दायित्वों का भी वर्णन किया है। उसका विचार है कि शासक का सबसे महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व सार्वजनिक कल्याण के लिए कार्य करना है। शासक को जनमत का आदर करना चाहिए तथा निरकुंश शक्तियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। शासक के पास असीमित अथवा निरकुंश अधिकार नहीं है। शासक का यह दायित्व है कि वह मनुष्य के अच्छे जीवन के लिए कार्य करे। अच्छे जीवन से अभिप्राय केवल भौतिक जीवन से नहीं अपितु अध्यात्मिक जीवन से भी है।

एक्विनास का विचार है कि यदि राजा अत्याचारी है और अपने दायित्वों का निर्वाह नहीं करता तो जनता को उसका वध नहीं करना चाहिए अपितु इस प्रकार के राजा को पद से हटाकर नये राजा का चुनाव कर लेना चाहिए।

(स) सरकार एवं चर्च में सम्बन्ध (Relation between Government and Church)— एक्विनास चर्च को सामाजिक एवं राजनीतिक संरचना का सर्वोच्च अंग मानता है। चर्च का स्थान राज्य तथा सरकार से ऊपर है। एक्विनास के अनुसार मनुष्य का उद्देश्य अच्छे जीवन की प्राप्ति है। अच्छे जीवन की प्राप्ति के लिए दो प्रकार के सुखों की आवश्यकता है-एक भौतिक सुख तथा दूसरा पारलौकिक सुख अथवा मोक्ष की प्राप्ति। भौतिक सुख की प्राप्ति में राज्य तथा सरकार की महत्वपूर्ण भूमिका है तथा पारलौकिक सुख की प्राप्ति का सर्वोच्च साधन चर्च है। अतः राज्य एवं सरकार की अपेक्षा चर्च एक सर्वोच्च संगठन है।

एक्विनास का कथन है- "मनुष्य के सन्दर्भ में उसके जीवन के अन्तिम लक्ष्य की पूर्ति के सम्पूर्ण दायित्व का निर्वाह चर्च करता है। अतः शासकीय सत्ता से चर्च की सत्ता स्वयं सर्वोच्च प्रमाणित है। राज्य, चर्च की सत्ता के अन्तर्गत एवं अधीन है। इसमें स्वतंत्र अथवा इसके समान नहीं है।"

थामस इस संसार की तुलना एक जहाज से करता है। जहाज पर अनेक चालक की देखरेख में जहाज के यंत्रों को ठीक करते हैं। वे सभी चालक के दिशा-निर्देशन में कार्य करते हैं। इसी प्रकार से संसार रूपी जहाज का चालक चर्च है तथा सभी इसके दिशा-निर्देशन में कार्य करते हैं।

एक्विनास का विचार है कि यद्यपि चर्च एक सर्वोच्च संगठन है तथा राज्य एवं सरकार उसके अधीन है, लेकिन चर्च और राज्य में किसी प्रकार का विरोधाभास नहीं है। चर्च और सरकार एक दूसरे के पूरक हैं। किसी भी शासक को यह अधिकार नहीं है कि वह चर्च की सत्ता, जो कि उससे सर्वोच्च है, की अवहेलना करें।

3. कानून के सम्बन्ध में विचार (Views regarding law): कानून का चिन्तन एवं विश्लेषण करने में एक्विनास जितना कार्य किसी भी अन्य मध्यकालीन चिन्तक के द्वारा नहीं किया गया। एक्विनास ने कानून की व्याख्या करते हुए अरस्तू, स्टोइक्स, सिसरो, ऑगस्टाइन (Aristotle, Stoics, Cicero, Augstine) एवं रोमन कानून विचारकों के विचारों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है।

एक्विनास कानून में विवेक तथा कल्याणकारी भावना का आवश्यक लक्षण निहित मानता है। लेविस ने उसके विचारों का व्यक्त करते हुए कहा- "कानून विवेक का वह अध्यादेश है जिसे जन-कल्याण हेतु उस व्यक्ति द्वारा कियान्वित किया जाता है जो समाज की देखभाल करता है।"

इस प्रकार से **कानून में तीन चीजें** स्पष्ट होती हैं जिसकी वकालत एक्विनास के द्वारा की गई है। सबसे प्रथम कि कानून विवेक का परिणाम होता है। दूसरा कि कानून सम्प्रभु का आदेश होता है और तीसरा यह कि कानून का आधार जन-कल्याण होता है।

कानून के लिए मात्र उसमें विवेक ही पर्याप्त नहीं है जब तक कि उसके पीछे लागू करने वाली शक्ति न हो। लागू करने की शक्ति के अभाव में कानून की अवधारणा उत्पन्न नहीं हो सकती।

(अ) कानूनों का वर्गीकरण (Classification of Law) — एक्विनास ने अपनी रचना 'सुम्मा थियोलोजिका' (Summa Theologica) में कानून को चार भागों में वर्गीकृत किया है-

(i) शाश्वत कानून (Eternal Law)

(II) प्राकृतिक कानून (Natural Law)

(III) दैवीय कानून (Divine Law)

(IV) मानवीय कानून (Human Law)

उपरोक्त चार प्रकार के कानूनों के सन्दर्भ में डंनिग का कथन है- "शाश्वत् कानून ब्रह्माण्ड को नियन्त्रित करने की योजना है, जो ईश्वर के मस्तिष्क में स्थापित है। प्राकृतिक कानून मनुष्य की वह हिस्सेदारी है जो वह एक विवेकपूर्ण प्राणी होने के नाते शाश्वत् कानून में सम्पन्न करता है जिसके द्वारा यह अच्छे एवं बुरे में अन्तर करता है तया अपना पवित्र उद्देश्य प्राप्त करने की कोशिश करता है। मानवीय कानून, मानवीय बुद्धि हे माध्यम से, प्राकृतिक कानून के सिद्धान्तों को विशेष सांसारिक परिस्थितियों में प्रयोग करना है। विशेष सन्दर्भ में दैवीय कानून वह है जिसके द्वारा मानवीय विवेक की सीमाओं और अक्षमताओं की पूर्ति की जाती है और मनुष्य को पारलौकिक उद्देश्य अथवा ईश्वर की तरफ निर्देशित किया जाता है, यह रहस्य का कानून

एक्विनास द्वारा प्रस्तुत किए गये विभिन्न प्रकार के कानूनों का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है

(i) शाश्वत कानून (The Eternal Law): शाश्वत् कानून ईश्वर के विवेक का परिणाम है। यह सम्पूर्ण संसार में व्याप्त होता है। शाश्वत् कानून के अनुसार ही ईश्वर ने इस पूरे संसार की रचना की है तथा इसी पर सम्पूर्ण विश्व आधारित है और स्थापित रहता है। यह ईश्वर के मस्तिष्क में स्थापित होता है। ये ईश्वर के आदेश लगातार इस विश्व में स्थापित हो रहे हैं। ये अभी जारी हैं तथा धीरे-धीरे अपनी सम्पूर्णता की ओर अग्रसर हैं। सम्पूर्ण पृथ्वी, जिसमें देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, सजीव-निर्जीव पदार्थ शामिल हैं, इसी शाश्वत कानून के अन्तर्गत हैं। मनुष्य की बुद्धि का अभी इतना विकास नहीं हुआ है कि वह इन कानूनों को समझ सके।

सैबाइन ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है- "यह दैवीय बुद्धि की आन्तिरिक योजना है जिसके द्वारा सम्पूर्ण रचना का आदेश हुआ। कानून अपने आप में मनुष्य की भौतिक प्रकृति से परे तवा मानवीय समग्र चिन्तन से बहुत दूर होता है।"

(II) प्राकृतिक कानून (Natural Law): प्राकृतिक कानून शाश्वत् कानून का वह भाग है जिसे मानवीय बुद्धि ने समझ लिया है। यह संसार में ईश्वर के विवेक का परिणाम है तथा शाश्वत् कानून का ही एक रूप है। यह शाश्वत् कानून का भाग होने के कारण प्रत्येक जीवन एवं जड़ पदार्थ में समान रूप से विद्यमान है। इस कानून का प्रस्तुतीकरण मनुष्य तथा पशु एवं अन्य पदाथों में भिन्न है। पशु एवं अन्य पदार्थों में विवेक के अभाव में इसका प्रस्तुतिकरण इतना ठीक नहीं है जितना कि यह मनुष्य में है। इसका कारण यह है कि मनुष्य में विवेक होता है।

एक्विनास का कथन है कि- "विवेकशील मनुष्य द्वारा शाश्वत् कानून के पालन की प्रक्रिया ही प्राकृतिक कानून है यह हमारे अन्दर दैवीय प्रकाश के प्रतिबिम्ब के अतिरिक्त कुछ नहीं है।"

(III) दैवीय कानून (Divine Law) : दैवीय कानून मनुष्य के लौकिक नहीं अपितु आध्यात्मिक अथवा पारलौकिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में मदद करते हैं। ये दैवीय कानून हमें प्रत्येक जाति तथा स्थानों पर देखने को मिलते हैं। ईश्वर ने ये आदेश अपने लोगों को अधिक स्पष्ट रूप से प्रदान किए हैं। ईसाईयों को इन दैवीय कानूनों का ज्ञान बाईबिल द्वारा, मुसलमानों को कुरान द्वारा तथा हिन्दुओं को वेदों के माध्यम से होता है। डंनिग ने दैवीय कानून के सन्दर्भ में कहा है- "विशेष सन्दर्भ में दैवीय कानून वह है जिसके द्वारा मानवीय विवेक की सीमाओं तवा अक्षमताओं की पूर्ति की जाती है और मनुष्य को पारलौकिक उद्देश्यों अथवा ईश्वर की ओर निर्देशित किया जाता है।"

(IV) मानवीय कानून (Human Law): मानवीय कानून वो कानून है जो प्राकृतिक कानून का वह भाग है जिन्हें विवेकशील मानव ने स्वीकार किया है और राज्य ने लागू किया है। इन्हीं के माध्यम से शान्ति एवं व्यवस्थाओं को बनाए रखा जाता है,

सम्पत्ति की सुरक्षा की जाती है, जन-कल्याण के कार्य किए जाते हैं तथा राज्य की सुरक्षा की जाती है। यह राज्य द्वारा स्थापित दण्ड व्यवस्था का प्रतीक है। इसका निर्माण, नियमन एवं संचालन उस व्यक्ति के द्वारा किया जाता है जिसे मानवीय समुदाय सर्वोच्च शक्ति प्रदान करता है और वह समाज का मुखिया होता है।

प्राकृतिक कानून के दो अंश होते हैं। एक दैवीय कानून के रूप में तथा दूसरा शासक निर्मित कानून के रूप में। इस प्रकार से शासक कानूनों का निर्माण करने में अपनी मनमानी का प्रयोग नहीं कर सकता। वह किसी भी ऐसे कानून का निर्माण नहीं कर सकता जो प्राकृतिक कानून अथवा इसकी भावना के विरुद्ध हो।

मानवीय कानूनों का पालन करवाने के लिए आवश्यक है कि वे न्याय संगत होने चाहिए। वे न्यायसंगत तभी माने जायेंगे जब वे प्राकृतिक कानूनों के अनुरूप होंगे। जो कानून अन्यायपूर्ण होते हैं, उन्हें हम मानवीय कानून नहीं मान सकते। इस प्रकार के अन्यायपूर्ण कानून लोगों को अपनी तरफ आकर्षित नहीं कर सकते। यही कानून मनुष्य को अपनी तरफ आकर्षित करते हैं जो न्यायपूर्ण हैं, वह प्राकृतिक कानून पर आधारित हैं। एक्विनास ने बताया है कि यह प्राकृक्तिक कानून पर आधारित है। एक्विनास ने बताया है कि कोई कानून न्याय संगत है अथवा नहीं, उसके तीन आधार हैं-

(i) कोई भी मानवीय कानून तभी न्यायसंगत माना जाएगा जब उसका उद्देश्य सार्वजनिक कल्याण हो।

(ii) इस प्रकार के मानवीय कानून को वैध शासक द्वारा निर्मित एवं लागू किया गया हो।

(iii) इसमें समानता का भाव होना चाहिए। यह नहीं कि वह किसी वर्ग को कम तथा किसी को अधिक रूप से प्रभावित करे।

डनिंग ने मानवीय कानून को स्पष्ट करते हुए कहा है- "मानवीय कानून, मानवीय बुद्धि के माध्यम से, प्राकृतिक कानून के सिद्धान्तों को विशेष सांसारिक परिस्थितियों में प्रयोग करना है।"

मानवीय कानून के निर्माण के पश्चात् एक्विनास कानून में परिवर्तन के सन्दर्भ में अपने विचार व्यक्त करता है। उसने कानून में परिवर्तन को दो आधारों पर औचित्य प्रदान किया है। एक्विनास का विचार है कि मानवीय विवेक अपने आप में पूर्णतः विकसित नहीं है। यदि यह अनुभव किया जाए कि पूर्व में विवेक की कमी के कारण मानवीय कानून में कोई दोष रह गया हो तो इस आधार पर उसमें संशोधन किया जा सकता है तथा उसमें परिवर्तन किया जा सकता है।

दूसरा परिवर्तन का आधार जन-कल्याण का उद्देश्य है। यदि यह अनुभव किया जाए कि पूर्व में जन-कल्याण के लिए निर्मित मानवीय कानून परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण अपना उद्देश्य पूरा नहीं कर पा रहा तो उसमें परिवर्तन किया जा सकता है।

एक्विनास अरस्तू के इस विचार से सहमत है कि कानूनों में परिवर्तन सोच-विचार करके करना चाहिए क्योंकि इससे कानूनों के प्रति उपेक्षा का भाव उत्पन्न हो सकता है तथा अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

4. सम्पत्ति सम्बन्धी विचार (Views regarding Property): संत थामस एक्विनास व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार का समर्थन करता है तथा इसे एक वैधानिक अधिकार मानता है। उसका कथन है- "व्यक्ति सम्पत्ति का अधिकार प्राकृतिक कानून के विरुद्ध नहीं है बल्कि इसके अतिरिक्त मानवीय विवेक की रचना है।"

एक्विनास व्यक्तिगत सम्पत्ति का तीन कारणों से समर्थन करता है-

प्रथम कारण यह है कि व्यक्ति उस चीज के प्रति अधिक सचेत होता है जो उसकी अपनी होती है, बजाए उस चीज के जो सामान्य है। व्यक्तिगत सम्पत्ति के अभाव में कोई भी कार्य नहीं करेगा तथा समाज का प्रत्येक सदस्य दूसरे को ठीक उसी प्रकार कार्य सौंप देगा जैसा कि उस घर में देखने को मिलता है जिसमें क्रमवार अनेक नौकरों का अस्तित्व पाया जाता है।

दूसरा कारण यह है एक व्यवस्था को कायम रखने के लिए यह आवश्यक है, नहीं तो इसका परिणाम यह हो सकता है कि जब किसी को भी चीज की आवश्यकता पड़े तो उसे वह निर्धारित वस्तु प्राप्त ही नहीं होगी और वह उसके लिए इधर-उधर दौड़ता रहेगा।

तीसरा कारण यह है कि शान्ति और व्यवस्था को कायम रखने के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति संतुष्ट हो तया उसके पास अपनी सम्पत्ति हो। प्रायः यह देखा जाता है कि झगड़े वहीं होते हैं जहाँ उपयोग की सामान्य वस्तुएँ होती हैं। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि सम्पत्ति के अधिकार का समर्थन करके एक्विनास ने यह प्रमाणित किया है कि वह मध्ययुग का अरस्तू था।

5. दास-प्रथा सम्बन्धी विचार (Views regarding slavery) : एक्विनास ने भी अरस्तू तथा ऑगस्टाइन के समान ही दास-प्रथा का समर्थन किया है लेकिन वह अरस्तू तथा ऑगस्टाइन के दासता के औचित्य से सहमत नहीं है। वह दास-प्रथा का समर्थन इसलिए करता है जिससे कि सैनिकों को युद्ध में वीरता एवं साहस के लिए प्रेरित किया जा सके। वह सैनिकों को इतिहास में अनेक प्रमाण देकर यह प्रमाणित करने का प्रयत्न करता है कि युद्ध में हारे हुए सैनिकों के लिए दास बनने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं है।

6. न्याय सम्बन्धी विचार (Views regaring justice): एक्विनास अपने न्याय सम्बन्धी विचारों के लिए रोमन विधि नेताओं के विचारों से प्रभावित रहा है। न्याय को उसने एक व्यवस्था के रूप में लिया है जिसके अन्तर्गत सभी व्यक्तियों को उनके अधिकार प्रदान किए जा सके। इस प्रकार से एक्विनास के न्याय सम्बन्धी विचार अरस्तू के वितरणात्मक न्याय की धारणा से निकट कहे जा सकते हैं जिसमें वह न्याय को योग्यतानुत्तार वितरण के सन्दर्भ में परिभाषित करता है। एक्विनास मानवीय कानून पर आधरित न्याय का समर्थन करता है। केवल इसलिए नहीं कि ये लिखित होते हैं अथवा इनके पीछे बाध्यकारी शक्ति होती है, बल्कि इसलिए क्योंकि इनका आधार प्राकृतिक कानून होते हैं। एक्विनास प्राकृतिक एवं सकारात्मक न्याय का समर्थन करता है। उसके अनुसार प्राकृतिक न्याय वह है जिसमें एक व्यक्ति उतना प्राप्त करता है जितना वह देता है तथा सकारात्मक न्याय वह है जिसमें कानून के समक्ष सभी को समान समझा जाता है।

निष्कर्ष (Conclusion): इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि संत एक्विनास की विचारधारा पूरे मध्यकाल के विचारों का सारांश प्रस्तुत करती है। इसमें हमें यूनानी तथा रोमन तत्वों का मिश्रण देखने को मिलता है। हमें संत एक्विनास पर अरसतू के चिन्तन का प्रभाव देखने को मिलता है। इसी प्रकार से एक्विनास के चिन्तन का प्रभाव अनेक यूरोपीय विचारकों पर देखने को मिलता है।

थामस एक्विनास : मध्य युग का अरस्तू

(St. Thomas Acquinas: Aristotle of Middle Age)

थामस एक्विनास अपने राजनीतिक चिन्तन के लिए अरस्तू का ऋणी था। विवेचना कीजिए।

(St. Thomas Acquinas was indebeted to Aristotle for his political thought. Discuss.)

अथवा

थामस एक्विनास को मध्य 'युग का अरस्तू' क्यों कहा जाता है? (Why St. Thomas Acquinas is called Aristotle of Middle Age?)

उत्तर- मैक्सी सहित अनेक विचारकों की यह मान्यता है कि थामस एक्विनास का चिन्तन मौलिक नहीं है अपितु इसमें हमें तीन अलग-अलग विचारधाराओं का मिश्रण देखने को मिलता है। इसमें से एक विचारधारा ईसाईयत की, दूसरी विचारधारा रोमन विधि शास्त्रियों की तथा तीसरी तथा सबसे महत्वपूर्ण विचारधारा अरस्तू की है ।

मैक्सी का कथन राबसे महत्वपूर्ण है। उसके अनुसार 'एक्विनास मध्ययुग का संत अरस्तू "(Acquinas was the sainted Aristotle of Middle-Ages. -Maxey) ।

एक्विनास दो कारणों से अरस्तू से प्रभावित हुआ। प्रथम तो जब वह नेपल्स विश्वविद्यालय में अध्ययन कर रहा था तो उसी समय अरस्तू की रचनाओं का रोमन अनुवाद हुआ था। उसने अरस्तू का अध्ययन किया। दूसरा कारण यह था कि उसका गुरु

अल्बर्ट महान् भी अरस्तू से अत्यधिक प्रभावित था।

एक्विनास को मध्ययुग का अरस्तू कहने का कारण यह है कि हमें एक्विनास के राजनीतिक विचारों पर अरस्तू के चिन्तन का प्रभाव देखने को मिलता है। एक्विनास पर अरस्तू के प्रभाव का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है-

1. मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है (Man is a social animal): अरस्तू के समान ही एक्विनास का चिन्तन भी इस बात पर आधारित है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इसका समर्थन करते हुए बिनस्टिन का कथन है कि "संत थामस सरकार की आवश्यकता को मनुष्य की सामाजिक प्रकृति पर आधारित मानता है और सरकार का संगठन शासक की सर्वोच्च बुद्धि और नैतिकता को शासितों के लाम के लिए मानता है। दोनों सन्दभों में अरस्तू से उसकी निकटता स्पष्ट है और यह पूर्व में स्थापित उस विचार से अपने आपको अलग कर लेता है जो उस समय तक स्थापित था जब तक अरस्तू की 'राजनीति' 13वीं शताब्दी में पुनः जानकारी में नहीं आई थी।"

2. राज्य के सम्बन्ध में विचार (Views regarding state): एक्विनास के राज्य की उत्पत्ति तथा प्रकृति के सम्बन्ध में अनेक विचार अरस्तू के विचारों से मेल खाते हैं। राज्य की उत्पत्ति के सन्दर्भ में एक्विनास ने ऑगस्टाइन की ईसाई मान्यता को ठुकरा कर अरस्तू के विचारों को स्वीकार किया है। एक्विनास राज्य को पाप का फल नहीं अपितु एक प्राकृतिक संस्था मानता है जो व्यक्ति के जीवन को अच्छा बनाने के लिए अनिवार्य है। एक्विनास अरस्तू के समान ही राज्य में राजतंत्रीय व्यवस्था का समर्थन करता है। सबसे अधिक प्रभाय हमें यह देखने को मिलता है कि दोनों ने समान रूप से जनमत लेकिन एक्विनास ने अपने राज्य सम्बन्धी दृष्टिकोण में अरस्तू के साथ संतपाल तथा ईसाईयत के सिद्धान्तों को भी मिला दिया है।

3. सरकारों का वर्गीकरण (Classification of Governments) : एक्विनास ने सरकारों का ठीक वही वर्गीकरण किया है जो अरस्तू ने किया है। अरस्तू के समान ही एक्विनास सरकारों को छः भागों में वर्गीकृत करता हैं। उसके अनुसार-राजतंत्र (Monarchy), कुलीनतंत्र (Aristocracy), तानाशाही (Tyranny), मध्यमवर्गीय लोकतंत्र (Polity), अल्पतंत्र (Oligarchy) तथा लोकतंत्र (Democracy)। कुल छः प्रकार की सरकारें होती हैं। लेकिन सरकार की प्राथमिकता को लेकर एक्विनास के विचार अरस्तू से थोड़े भिन्न हैं। जहाँ अरस्तू मध्यमवर्गीय लोकतंत्र (Polity) को सबसे उत्तम शासन प्रणाली मानता है वहीं एक्विनास जनमत पर आधारित राजतंत्र (Elected Monarchy) को सबसे अच्छी शासन प्रणाली मानता है।

4. कानून की सर्वोच्चता का समर्थन (Support to the Supremacy of Law) : यद्यपि एक्विनास के कानून सम्बन्धी विचारों का स्रोत केवल अरस्तू की कानून की अवधारणा ही नहीं है और उसने रोमन विधिवेत्ताओं, स्टोईक्स, सिसरो आदि के विचारों को भी महत्व दिया है लेकिन कानून की सर्वोच्चता के सन्दर्भ में वह अरस्तू से ही अधिक प्रभावित रहा है।

इस विषय में डनिंग का कचन है- "संत बामस एक्विनास का कानून एवं न्याय का सिद्धान्त वह पारा है जिसके माध्यम से अरस्तू, स्टोइक्स, ऑगस्टाइन, सिसरो, रोम के साम्राज्यवादी विधिवेत्ताओं आदि के सिद्धान्त सामूहिक रूप में आधुनिक युग को हस्तांरित किए गये हैं।"

एक्विनास ने कानून की सर्वोच्चता की स्थापना करके अरस्तू के समान ही अपना नाम आधुनिक शासन व्यवस्थाओं के साथ सम्बद्ध कर लिया है।

5. व्यक्तिगत सम्पत्ति का समर्थन (Support to Private Property): एक्विनास ने भी अरस्तू के समान ही व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार का समर्थन किया है। अरस्तू ने भी अपने तकों से व्यक्तिगत सम्पत्ति का औचित्य प्रमाणित किया तथा एक्विनास ने भी तर्क देकर व्यक्तिगत सम्पत्ति का औचित्य प्रमाणित किया। दोनों ही विचारकों ने समान रूप से सामूहिक स्वामित्व के विचार को अमान्य कर दिया है। एक्विनात ने सम्पत्ति के अधिकार का समर्थन करके यह प्रमाणित कर दिया है कि वही मध्ययुग का अरस्तू था।

6. दास-प्रथा का समर्थन (Support to Slavery): यद्यपि आज के आधुनिक युग में दास-प्रथा को न्यायपूर्ण नहीं माना जाता लेकिन एक्विनास तथा अरस्तू के समय की परिस्थितियों में यह एकमात्र सत्य था। एक्विनास ने भी अरस्तू के समान ही दास-प्रथा का समर्थन किया है। लेकिन जिस आर पर अरस्तू दास-प्रथा का समर्थन करता है, एक्विनास उसके स्थान पर दूसरे

आधार को अपनाता है।

निष्कर्ष (Conclusion) : अन्त में कहा जा सकता है कि एक्विनास ने जिस प्रकार से अरस्तू के विचारों का उपयोग किया है उससे अरस्तू यूनान के नगर-राज्यों से निकलकर यूरोप के साम्राज्यों में अध्ययन एवं विश्लेषण का विषय हो गया। एक्विनास ने अरस्तू के राजनीतिक विचारों का ईसाईकरण करके उसका विस्तार किया है। जब हम एक्विनास के मानव प्राणी, राज्य की उत्पत्ति, संविधानों एवं सरकारों का वर्गीकरण आदि पढ़ते हैं तो हमें यह अन्तर दिखाई नहीं देता कि हम अरस्तू का अध्ययन कर रहे हैं अथवा एक्विनास का। लेकिन एक्विनास को अरस्तू की कार्बन कापी (Carbon Copy) कहना उचित नहीं है।

थामस एक्विनास का राजनीतिक चिन्तन में योगदान (Contribution of St. Thomas Acquinas to Politics Thought)

प्रश्न — राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में संत थामस एक्विनास के योगदान की विवेचना कीजिए। (Discuss the contribution of St. Thomas Acquinas in the field of political thought.)

अथवा

राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में संत यामस एक्विनास के प्रभाव का वर्णन कीजिए। (Describe the influence of St. Thomas Acquinas in the history of political thought.)

उत्तर- संत थामस एक्विनास के राजनीतिक विचारों से स्पष्ट होता है कि वह मध्य युग का सबसे महान् विचारक था। एक्विनास के समय में धर्म सत्ता (Papal authority) तया शासकीय सत्ता (State authority) के मध्य अत्यधिक विवाद था। अपने राजनीतिक चिन्तन में एक्विनास ने यह प्रमाणित किया कि इन दोनों सत्ताओं के मध्य किसी प्रकार का विरोधाभास नहीं है तथा दोनों एक-दूसरे की पूरक हैं। राज्य सत्ता धर्म सत्ता को लागू करने का यंत्र है।

एक्विनास को मध्य-युग का अरस्तू भी कहा जाता है। अरस्तू के राजनीतिक विचारों से उसने विवेक का तत्व ग्रहण करके उसे ईसाई मत के साथ आत्मसात कर दिया। एक्विनास ने यूनानी चिन्तक अरस्तू के विचारों को पूरे मध्यकाल के विचारकों के आकर्षण के कारण नहीं अपितु उन विरोधी विचारों में सामंजस्य स्थापित करने के कारण है जो तत्कालीन समय में स्थापित थे। जासजी का इस सन्दर्भ में कथन है कि- "इस नये विश्व में रोमन कैथोलिक चर्च को एक ऐसे व्यापक एवं व्यवस्थित सिद्धान्त की शीघ्र आवश्यकता थी, जो कि ईसाईयत की आरम्भिक परिस्थितियों तया चर्च शक्ति के विश्व मान्यता के संकट के समय सद्भावनापूर्वक स्थापित कर सके। संत बामस के द्वारा यह कार्य अपने विचारों की मौलिकता के द्वारा नहीं बल्कि अधिक मिन्न तत्वों को तार्किक एवं समझपूर्ण तरीके से जोड़ने तया एकजुट करने की अपनी विलक्षण बुद्धिमता के प्रशंसनीय रूप से पूरा किया गया।"

एक्विनास का योगदान यह भी है कि राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में अरस्तू के बाद वैज्ञानिक चिन्तन का अभाव हो गया था। प्रायः सम्पूर्ण चिन्तन धर्म पर आधारित अव्यवस्थित करके प्रस्तुत किया। पोप लुई-XIII ने एक्विनास की रचनाओं को कैयोलिक चर्च का सबसे बड़ा संरक्षक (The pre-eminent guardian and glory of the Catholic Church) माना। पोप ने यह भी कहा कि एक्विनास के विचारों को विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों में शामिल किया जाना चाहिए।

एक्विनास अरस्तू से अवश्य ही प्रभावित हुआ लेकिन स्वयं एक्यिनास ने अनेक चिन्तकों को प्रभावित किया। एक्विनास के विचारों का प्रभाव रिचर्ड हूकर (Richard Hooker) पर पड़ा। रिचर्ड हूकर का प्रभाव लॉक पर पड़ा और लॉक ने एक्विनास से मानवीय एवं प्राकृतिक कानून की अवधारणा को ग्रहण किया। एक्विनास ने कानून के शासन की अवधारणा को स्थापित किया। उसने बताया कि शासक वर्ग, जो कि कानूनों का निर्माण करता है, वह स्वयं भी कानून के अधीन है। शासक वर्ग मानवीय कानूनों का निर्माण करता है तथा प्राकृतिक कानूनों के अधीन होता है।

एक्विनास ने राजसत्ता के कल्याणकारी स्वरूप का समर्थन करके कल्याणकारी राज्य की स्थापना में योगदान दिया। लॉक ने इस विचार को आगे बढ़ाया तथा बर्क ने इसे अपने क्रान्ति सम्बन्धी विचारों का आधार बनाया। राजसत्ता का उद्देश्य

जनकल्याण है। उसका कार्य लोगों की सम्पत्ति पर कम कर लगाना तया उनकी सुरक्षा करना है। यदि कोई राजसत्ता यह नहीं कर सकती तो लोगों को क्रान्ति करने का अधिकार है तथा उस राजसत्ता को बदलने का भी अधिकार है।

एक्विनास को मध्ययुग का प्रतिनिधि विचारक कहा जा सकता है। उसका कारण यह है कि उसने मध्ययुग में स्थापित विभिन्न विचारधाराओं का समन्वय प्रस्तुत किया है। उसके समय में रोमन कैथोलिक वर्च की विचारधारा, रोमन साम्राज्यवादी विचारधारा, अरस्तू की विचारधारा, रोमन विधिवेत्ताओं की विचारधारा का अस्तित्व रहा है। राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में एक्विनास का यह योगदान है कि उसके चिन्तन का अध्ययन करके मध्यकाल की इन सभी विचारधाराओं का दर्शन किया जा सकता है।

राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में एक्विनास के योगदान का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है-

1. **अरस्तूवाद का जनक** (Founder of Aristotelinism) — अरस्तू को आज हम राजनीति विज्ञान का जनक मानते हैं। अरस्तू का चिन्तन यूनानी परिस्थितियों का परिणाम था लेकिन उसमें यूनानी तत्त्वों के साथ-साथ सार्वभौमिक तत्त्व भी थे। अरस्तू का चिन्तन सैकड़ों वर्षों तक अन्धेरे में रहा। ईसा पूर्व ही उसका प्रभाव कम होने लगा। ईसाई मत के उदय ने अरस्तू के विचारों की अवहेलना आरम्भ कर दी। लेकिन अल्बर्ट महान् के आगमन से अरस्तू को महत्व मिलना आरम्भ हुआ। इसे पुनः स्थापित एक्विनास ने अपनी रचना '***कमैन्ट्रिज ऑन एरिसटोटल' (Commentaries on Aristotle)*** के द्वारा किया। अरस्तूवाद के अन्तर्गत एक्विनास के निम्न विचार स्थापित करने का श्रेय दिया जाता है-

(i) मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।

(II) राज्य एक प्राकृतिक एवं अनिवार्य संस्था है।

(III) शासन व्यवस्था का आधार जनमत का समर्थन होता है।

(IV) राज्य का उद्देश्य मानवीय जीवन को अच्छा बनाना है।

(V) सरकारों के प्रायः छः प्रकार पाये जाते हैं।

(VI) शासन व्यवस्था कानून के शासन पर आधारित होनी चाहिए।

(VII) व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार मानवीय प्रगति के लिए अनिवार्य है।

अतः एक्विनास को अरस्तूवाद की पुनः स्थापना के लिए उत्तरदायी माना जाता है।

2. विद्वतावाद की स्थापना (Establishment of Scholasticism) — विद्वतावाद एक ऐसी वैचारिक व्यवस्था थी जिसमें धर्मशास्त्र तथा विवेक को समाविष्ट किया गया था। इसमें धर्म को बौद्धिक आधार पर स्थापित करने का प्रयास किया गया। यह धर्म, दर्शन तथा विवेक के उन सिद्धान्तों का समन्वय जिसका उद्देश्य एक ऐसी सार्वभौमिक मान्य विचारधारा का प्रतिपादन करना था जो कि समाज एवं राज्य का मार्गदर्शन कर सके। 13वीं शताब्दी में यह विद्वतावाद अपनी चरम सीमा पर थी। एक्विनास ने अपने दर्शन में यूनानी दर्शन, विवेक तथा ईसाईयत के सिद्धान्तों का समावेश करके इस विद्वतावाद को स्थापित किया। इसमें धर्म को अन्धविश्वास से बाहर करके उसे विवेक के मार्ग पर अग्रसर किया। इसमें तर्क के द्वारा धार्मिक सत्ता की सर्वोच्चता स्थापित की गई। आने वाले लम्बे समय तक यह विद्वतावाद यूरोपीय चिन्तन पर प्रभावी रहा।

3. धर्म सत्ता एवं राजसत्ता में समन्वय (Coordination between papal authority and state authority) — पांचवीं शताब्दी में धर्म सत्ता को अपने-अपने क्षेत्र में सर्वोच्च मानने का दो तलवारों का सिद्धान्त (Theory of two swords) प्रचलित था। इसने कालान्तर में धर्म सत्ता तथा राजसत्ता के मध्य विवाद एवं संघर्ष को जन्म दिया। इस सिद्धान्त ने दोनों सत्ताओं के मध्य सम्बन्ध को समाप्त कर दिया। एक्विनास ने विवेकपूर्ण तरीके से चर्च की सर्वोच्चता को स्थापित किया तथा राजसत्ता को महत्वपूर्ण स्थान दिया। एक्विनास द्वारा स्थापित दोनों सत्ताओं के मध्य का यह समन्वय यूरोप के राज्यों में लम्बे

समय तक क्रियाशील रहा।

4. राजतंत्रवाद की स्थापना (Establishment of Monarchism)— यूरोप के राजतंत्रों का शानदार इतिहास रहा है। एक्विनास ने न केवल इस व्यवस्था का समर्थन किया बल्कि विवेकपूर्ण तरीके से इसका औचित्य भी सिद्ध किया। एक्विनास ने तर्क दिया कि जिस प्रकार पारलौकिक संसार का एक ही स्वामी है, उसी प्रकार राज्य का भी एक ही स्वामी होना चाहिए। अतः राजतंत्रीय व्यवस्था ही सर्वोत्तम व्यवस्था है। इसी के अन्तर्गत जन-कल्याण के कार्य किए जा सकते हैं। उस समय की परिस्थितियों के अनुरूप राजतंत्रीय व्यवस्था में ही राज्य की सुरक्षा समुचित ढंग से हो सकती थी। एक्विनास का राजतंत्र उत्तरदायी शासन की स्थापना करता है।

5. कानून के शासन की स्थापना (Establishment of rule of Law) — मध्यकाल में विचारकों ने अनेक प्रकार के कानूनों के सन्दर्भ में विचार व्यक्त किए। यह विवाद रहा कि दैवीय कानून श्रेष्ठ है, प्राकृतिक कानून श्रेष्ठ है अथवा राज्य के कानून श्रेष्ठ है। एक्विनास ने अपनी कानून सम्बन्धी धारणा में इस विवाद का समाधान करते हुए सभी प्रकार के कानूनों को एक-दूसरे के साथ सम्बद्ध किया। शाश्वत् कानून, प्राकृतिक कानून, दैवीय कानून तथा मानवीय कानून परस्पर भिन्न नहीं अपितु एक दूसरे का अंश है। इनमें विरोधाभास नहीं बल्कि एक का पालन दूसरे के पालन में सहायक है।

एक्विनास ने कानून के शासन की धारणा का भी समर्थन किया।

6. सार्वभौमिकतावाद का समर्थन (Support to Universalism) — एक्विनास ने सम्पूर्ण मानवीय एकता का आदर्श प्रस्तुत किया हैं। उसके शाश्वत् कानून की अवधारणा बेशक स्पष्ट नहीं है लेकिन सार्वभौमिक है। इसी प्रकार से पोप की सत्ता की सर्वोच्चता के माध्यम से वह ईसाई राज्यों की एकता की बात कहता है।

निष्कर्ष (Conclusion): एक्विनास का राजनीतिक दर्शन ऐसे नैतिक एवं धार्मिक सिद्धान्तों की स्थापना करता है जिस पर मध्यकालीन सभ्यता आधारित रही। उसने एक ऐसे धार्मिक समाज की संकल्पना की जिसका आधार अंध-विश्वास नहीं बल्कि विवेक था। संत थामस एक्विनास के योगदान को बार्कर ने बहुत ही महत्वपूर्ण ढंग से व्यक्त करते हुए कहा है कि हम संत थामस पर अरस्तू का प्रभाव देखते हैं। हम संत थामस का प्रभाव रिचर्ड हूकर पर देखते हैं। हम रिचर्ड हूकर का प्रभाव लॉक पर देखते हैं और लॉक का प्रभाव बर्क पर देखते हैं। इससे सिद्ध होता है कि संत थामस एक्विनास ने अपने राजनीतिक चिन्तन में मौलिकता का प्रदर्शन भले ही न किया हो। उसे एक महान् संदेशवाहक कहा जा सकता हैं। जिसने यूनानी चिन्तन को अपने माध्यम से यूरोप को परिचित कराया तथा यूरोप के माध्यम से पूरी दुनिया को परिचित कराया।

Unit -IV

मैक्यावली (Machiavelli)

प्रश्न — पश्चिमी राजनीतिक विचारों में मैक्यावली के मुख्य योगदान का परीक्षण कीजिए।

अथवा

आधुनिक राजदर्शन पर मैकियावेली के योगदान की विवेचना कीजिए।

(Discuss Machiavelli's contribution to Modern Political Thought.)

अथवा

मैकियावेली को प्रथम आधुनिक विचारक क्यों कहा जाता है?

(Why is Machiavelli called the first modern Political Thinker?)

उत्तर- मैकियावेली एक ऐसा राजनीतिक विचारक है, जो मध्ययुग का अन्त और आधुनिक युग का शुभारम्भ करता है। उसकी रचनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसके राजनीतिक विचार मध्य युग से उसका सम्बंध-विच्छेद कर देते हैं। उसकी विख्यात पुस्तक 'प्रिंस' के विषय में डानिंग का मत है, "प्रिन्स एक ऐसी प्रथम महान् रचना है, जिसने मध्ययुगीन चिन्तन-पद्धति से सम्बंध विच्छेद किया।" निःसंदेह वह राजनीतिक विचारों में ऐसी अनेक प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करता है, जो आधुनिक युग की प्रमुख विशेताएँ मानी गई हैं।

उसके विचारों में जो नवीन प्रवृत्तियों दिखायी देती हैं, उनमें से कुछ प्रमुख प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं। मैक्यावली के योगदान को हम निम्नलिखित बिंदुओं से दर्शा सकते हैं-

1. अध्ययन-पद्धति (Method of Study)- मध्य युग में राजनीतिक एवं धार्मिक सभी प्रकार की समस्याओं पर विद्वतावादी-पद्धति (Scholastic Method) से विचार किया जाता था। इस पद्धति के अन्तर्गत पहले पूर्व पक्ष की युक्तियाँ प्रस्तुत की जाती थीं; तत्पश्चात् विभिन्न तर्कों से इनका खण्डन करते हुए उत्तर पक्ष की स्थापना की जाती थी। मैकियावेली ने मध्य युग की इस पद्धति का पूर्ण त्याग करते हुए ऐतिहासिक पद्धति (Historical Method) का अनुसरण किया है। उसका विचार था कि सर्वत्र और सभी कालों में मानव स्वभाव एक सा होता है अर्थात वह एक ही प्रकार के उद्देश्यों से संचालित होता है और इसे एक ही प्रकार की समस्याओं को हल करना पड़ता है। वह यह दावा भी करता है कि सर्वप्रथम उसी ने राजनीति और इतिहास के सम्बंध की खोज की है। इसीलिए उसने प्राचीन यूनान और रोम के इतिहास का गहन अध्ययन किया और अपनी पुस्तक 'प्रिन्स' में दिए गए अपने प्रत्येक मन्तव्य या निष्कर्ष की यूनान और रोम के इतिहास के उदाहरणों से पुष्टि की है। इसके आधार पर अपने ग्रन्थ 'राजनीति' की रचना की थी। लेकिन मैकियावेली की यह अध्ययन पद्धति पूरी तरह वैज्ञानिक नहीं है, क्योंकि वह तत्कालीन परिस्थितियों की दृष्टि से पहले ही कुछ सिद्धान्त तय कर लेता है और बाद में छांट-छांट कर इतिहास के प्रमाणों से इनकी पुष्टि करता है।

2. राजनीति का धर्म और नैतिकता से पृथक्करण (Separation of Politics form Religion and Morality)- मैकियावेली के विचारों में हमें मध्य युग से बिल्कुल अलग प्रवृत्ति देखने को मिलती है-वह है राजनीति से धर्म और नैतिकता को अलग रखना। सोफिस्टों के अतिरिक्त सुकरात, प्लेटो और अरस्तू आदि सभी यूनानी विचारक नैतिक जीवन को बहुत महत्त्व देते थे। इसी प्रकार ईसाई विचारक दैवीय कानूनों (Divine Laws) में तथा धर्म-ग्रन्थों में वर्णित ज्ञान में पूरी-पूरी श्रद्धा रखते थे। किन्तु मैकियावेली मध्य युग का ऐसा पहला चिन्तक है, जिसने स्पष्ट रूप से राजनीति से धर्म और नैतिकता को पृथक् कर दिया। वह सत्ता प्राप्त करने के लिए और उसे सुदृढ़ बनाने के लिए अनीति, कुकर्म, अधर्म, विश्वासघात, हत्या, हिंसा और क्रूरता सभी को न्यायोचित बताता है। वह राजनीति में साम, दाम, दण्ड एवं भेद सभी साधनों के अपनाने का खुलकर समर्थन करता

है। वह कहता है कि ऐसे अवसरों पर जब राज्य की सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो जाए, शासक के लिए नैतिकता और धर्म का पालन करना बिल्कुल भी जरूरी नहीं है।

3. राज्य की नवीन अवधारणा (New Concept of State)- प्राचीन यूनानी विचारक राज्य को एक नैतिक संस्था मानते थे- एक ऐसी संस्था, जिसका उद्देश्य मनुष्य के जीवन को उत्तम व सद्गुणी बनाना है, तो ईसाई चिन्तक धार्मिक राज्य की बात करते थे और राज्य को मनुष्य द्वारा किए गए आदिम पाप (Original Sin) का परिणाम मानते थे; किन्तु मैकवावेली राज्य की एक नवीन अवधारणा प्रस्तुत करता है। मानव स्वभाव की दानवता और दुष्टता में विश्वास रखने के कारण वह राज्य की उत्पत्ति का कारण मनुष्य का स्वार्थ मानता है। उसकी धारणा है कि मनुष्य शक्ति का उपासक है और इसीलिए वह अपनी शक्ति एवं सत्ता का निरन्तर विस्तार चाहता है। मैकियावेली राज्य को सर्वोच्च सम्प्रभुतासम्पन्न संस्था मानता है। इसीलिए उसने इस बात का प्रबल विरोध किया कि चर्च या पोप का राज्य पर नियन्त्रण रहे। इसके ठीक विपरीत, उसने इस बात पर बल दिया कि राज्य का चर्च पर नियन्त्रण होना चाहिए।

4. यथार्थवादी सिद्धान्त (Realistic Theory) - प्रायः मैकियावेली के पूर्ववती विचारक आदर्शवादी थे। वे ऐसे आदर्शवादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं, जिन्हें कार्यान्वित न किया जा सके। प्लेटो का आदर्श राज्य पूर्ण रूप से उसकी कल्पना और आदर्शवादिता पर आधारित है, तो अरस्तू का आदर्श राज्य भी न्यूनाधिक एक अव्यावहारिक राज्य ही है। इसी तरह सन्त आगस्टाइन का ईश्वरीय नगर (राज्य) भी सांसारिक राज्य नहीं है। किन्तु मैकियावेली एक ऐसा विचारक है, जो प्राचीन और मध्य युगीन परम्परा से हटकर जीवन की वास्तविक समस्याओं पर विचार करता है और इनका व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करता है। एक पूर्णतः यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए वह धर्म और नैतिकता को राजनीति में कोई स्थान नहीं देना चाहता है।

5. राष्ट्रवाद और राष्ट्र-राज्य की स्थापना पर बल (Nationalism and Emphasis on the establishment of Nation-State)- मैकियावेली ऐसा विचारक है, जिसने न केवल राज्य के विषय में अपने विचार-प्रस्तुत किए हैं, बल्कि इससे जुड़ी अन्य अवधारणाओं, जैसे-राष्ट्र, राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रवाद के विषय में भी अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। उसके समय इटली राज्य छिन्न-भिन्न और पाँच गणराज्यों में विभाजित था और इसी के साथ-साथ राष्ट्रवाद की जगह भाषा और धर्म ने ले ली थी। वह इटली के एकीकरण को लेकर चिन्तित था। इसके लिए उसने इटली की राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकता पर बल दिया और कहा कि एकीकरण के लिए समान भाषा, साहित्य एवं समान कानून होना चाहिए। वह इटली के पाँचों गणराज्यों का एकीकरण करके इटली में एक सुदृढ़ राष्ट्र-राज्य की स्थापना करना चाहता था। मैकियावेली से पहले राजनीतिक विचारक राष्ट्र-राज्य की नहीं सोचते थे, क्योंकि या तो उनका दृष्टिकोण छोटे नगर-राज्यों तक सीमित था या फिर वे विश्व राज्य स्थापित करने की सोचते थे।

6. सरकार (Government)- आम तौर पर मैकियावेली को राजतन्त्र का समर्थक माना जाता है। इसका आधार उसका ग्रन्थ 'प्रिन्स' माना जाता है, जिसमें वह शासक को नैतिक बन्धनों से मुक्त करके हर अच्छे-बुरे तरीके से सुदृढ़ एवं शक्तिशाली शासन स्थापित करने की सलाह देता है। लेकिन ऐसा नहीं है कि वह अकेले राजतन्त्र को ही सर्वोत्तम शासन पद्धति मानता हो। यह बात उसकी दूसरी पुस्तक 'डिस्कोर्सेज' में दिए शासन पद्धतियों के वर्गीकरण और इनके गुण-दोषों की चर्चा से स्पष्ट होती है। शासन-पद्धतियों का वर्गीकरण करते समय वह अरस्तू का अनुसरण करता है। वह सरकार के तीन रूप बताता है-राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र और वैध लोकतन्त्र और वह इसके तीन ही विकृत रूप बताता है-निरंकुशतन्त्र, अल्पतन्त्र (धनिकतन्त्र) और लोकतन्त्र। वह पोलीवियस और सिसरो की तरह मिश्रित सरकार को सर्वाधिक उपयुक्त सरकार मानता है, किन्तु उसका सरकारों का यह विवेचन सतही ही है। वास्तव में वह सरकार को केवल दो ही रूपों-राजतन्त्र और गणतन्त्र, में वगीकृत करता है।

7. दैवीय कानून का विरोध (Opposition to Divine Law)- मध्य युग के विचारक दैवीय कानूनों और प्राकृतिक कानूनों का प्रतिपादन करते थे। लेकिन मैकियावेली इन दोनों प्रकार के कानूनों को पूर्णतः अस्वीकार करता है, क्योंकि उसके मतानुसार मानव का केवल एक ही उद्देश्य होता है और वह उद्देश्य है-शक्ति एवं सत्ता की प्राप्ति। अतः मानव आचरण के नियमों का निर्धारण इसी आधार पर किया जाना चाहिए।

दैवीय कानूनों और प्राकृतिक कानूनों को अस्वीकार करने के बाद वह नागरिकों के आचरण को नियन्त्रित करने के लिए राज्य द्वारा कुछ नियम बनाने पर बल देता है और इस प्रकार राज्य में कानूनों के महत्त्व को स्वीकार करता है।

8. धर्म-सम्बन्धी विचार (Views regarding Religion)- यद्यपि मैकियावेली राज्य की स्थापना और सुरक्षा के लिए धर्म-विरुद्ध कार्यों का प्रबल समर्थन करता है, लेकिन राजनीतिक दृष्टि से वह धर्म की उपयोगिता भी स्वीकार करता है, क्योंकि धर्म के आधार पर लोग राज्य के कानूनों का पालन करते हैं। वह लिखता है, "धार्मिक नियमों का पालन गणराज्यों की महत्ता का कारण होता है; इनकी उपेक्षा राज्यों के विनाश को उत्पन्न करती है।" वह कहता है कि व्यक्ति शासक द्वारा बनाए गए नियमों की अनेक बार अनेदखी कर देता है, लेकिन वह धर्म पर आधारित दैवीय नियमों को ईश्वर की आज्ञा समझकर इनकी अनदेखी नहीं करता है। इसीलिए कानून-निर्माता प्रायः यही कहते हैं कि ये नियम उनको ईश्वर से प्राप्त हुए हैं।

आमतौर पर धर्म का समर्थक होते हुए भी वह ईसाई धर्म का कटु आलोचक है, क्योंकि यह परलोक पर तथा नम्रता आदि गुणों पर अत्यधिक बल देता है, जब कि प्राचीन धर्म साहस, शूरवीरता एवं पौरुष आदि मानवीय गुणों पर बल देता था। उसकी धारणा है कि ईसाई धर्म के नम्रता आदि गुणों ने इटली की जनता को धर्मभीरू एवं दब्बू बना दिया है।

9. शक्ति-राजनीति का समर्थक (Exponent of Power-Politics): मैक्यावैली ने अपने सम्पूर्ण राजनैतिक दर्शन में शक्ति को अत्यन्त महत्व प्रदान किया है। उसने शक्ति को आधार बताया है। शासक को अधिक से अधिक शक्ति प्राप्त करने की सलाह दी है। शक्ति के निर्दयतापूर्ण प्रयोग की वकालत की है। उसका कहना है कि शक्ति के प्रयोग के कारण ही किसी राज्य पर न केवल अधिकार किया जा सकता है बल्कि उस पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए भी शक्ति की आवश्यकता होती है। शक्ति के निर्दयतापूर्ण प्रयोग के कारण जनता राज्य के विरुद्ध विद्रोह के बारे में सोच भी नहीं सकती। आधुनिक युग में हम शक्ति को राजनीति का महत्वपूर्ण तत्व मानते हुए कहते हैं कि राजनीति शक्ति के लिए संघर्ष है। मैक्यावैली आधुनिक युग का पहला विचारक था जिसने शक्ति-राजनीति की अवधारणा को प्रतिपादित किया।

10. राजनीति और अर्थशास्त्र में सम्बन्ध (Relation between Economics and Politics) : मैक्यावैली ने राजनीति का धन से सम्बन्ध भी स्पष्ट किया है और शासक को कई मामलों में आर्थिक सलाह दी है। उसका विचार था कि धन प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से राजनीति से सम्बन्धित है। यद्यपि युद्ध को जीतने में वह धन की बजाए शक्ति को महत्त्व देता है फिर भी धन की आवश्यकता पर बल देता है। उसका मानना है कि व्यक्ति अपने जीवन के बाद धन को महत्त्व देता है लेकिन पैतृक सम्पत्ति को यह और भी अधिक महत्त्व देते हुए कहता है कि व्यक्ति अपने पिता की मृत्यु को भूल सकता है लेकिन अपने पैतृक सम्पत्ति के खोने के दु:ख को नहीं। मैक्यावैली ने शासक को यह सलाह दी है कि उसे धन के मामले में मितव्ययी होना चाहिए और राजकोष में वृद्धि करनी चाहिए।

11. अवसरवादिता का तत्त्व (Element of Opportunitism): मैक्यावैली ने कहा है कि मनुष्य को अवसरवादी होना चाहिए। उसे यह ध्यान रखना चाहिए कि राजनीति में कोई किसी का स्थायी मित्र या शत्रु नहीं होता। अपने जीवन और राज्य की सुरक्षा के लिए उसे शत्रु को मित्र और मित्र को शत्रु घोषित करने में संकोच नहीं करना चाहिए। राजनीति में अवसरवादिता को एक नकारात्मक तत्त्व के रूप में मानकर इसकी आलोचना की जाती है लेकिन यह एक कटु सच्चाई है कि- "राजनीति सम्भावनाओं का खेल है और अवसरवादिता इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।" मैक्यावैली से पूर्व सम्पूर्ण मध्यकाल का राजनीतिक चिन्तन अवसरवादिता के उस तत्व की अवहेलना कर रहा था जो इटली सहित पूरे यूरोप की राजनीति का एक भाग था।

12. इतिहासवाद का जनक (Founder of Historicism): मैक्यावैली को इसलिए भी आधुनिक विचारक माना जाता है कि उसने अपने निष्कषों को प्रमाणित करने के लिए इतिहास के प्रमाणों का आश्रय लिया। इसके बाद अनेक लेखकों, विशेषकर समझौतावादियों और कार्ल मार्क्स ने इसी इतिहासबाद को अपनाकर अपने विश्लेषण प्रस्तुत किए।

13. व्यवहारवाद का प्रणेता (Prophet of Behaviouralism): यद्यपि व्यवहारवाद की स्थापना का श्रेय अमेरिकन लेखकों को दिया जाता है। लेकिन मैक्यावेली ने मानवीय व्यवहार की सूक्ष्म व्याख्या करके व्यवहारवाद को स्थापित करने का प्रयल किया है।

14. राजनीति और शक्ति (Politics and Power): आधुनिक समय में राजनीति को शक्ति के सन्दर्भ में परिभाषित किया जाता है। मैक्यावैली ऐसा प्रथम विचारक था जिसने राजनीतिक शक्ति को अच्छे जीवन की प्राप्ति का साधन नहीं अपितु सम्पूर्ण राजनीति का उद्देश्य माना। मैक्यावैली ने राजनीति को आदर्शवाद, नैतिकता तथा धर्म के क्षेत्र से बाहर निकालकर उसे शक्ति के सन्दर्भ में परिभाषित किया।

निष्कर्ष (Conclusion): अन्त में कहा जा सकता है कि मैक्यावैली को यद्यपि उसके अति-ययार्थवाद के कारण आलोचना का शिकार बनाया जाता है लेकिन राजनीति के प्रत्येक क्रम में मैक्यावैली का प्रयोग किया जाता है। भारत के चाणक्य और इटली के मैक्यावेली का स्थान व्यवहारिक राजनीति में सर्वोपरि माना जाता है। वर्तमान राजनैतिक व्यवस्थाओं को समझने के लिए अनेक विधियाँ विकसित की गई हैं लेकिन मैक्यावैली ने जो दृष्टिकोण उपलब्ध कराया है उसका कोई मुकाबला नहीं कर सकता है। उन्हें उनके द्वारा प्रयुक्त अध्ययन पद्धतियों के कारण और उनके राज्य, शक्ति राजनीति, धर्म, नैतिकता आदि के सम्बन्ध में विचारों के कारण एक आधुनिक चिन्तक मानना ही उपयुक्त होगा। उन्होंने आधुनिक राजनैतिक विचारों की ऐसी नींव रखी जिस पर आने वाले विचारकों ने अपने-अपने विचारों से भवन निर्माण का कार्य आरम्भ किया।

थॉमस हॉब्स (1588-1679 ई.)

प्र० हॉब्स के सामाजिक समझौते के सिद्धान्त की विवेचना कीजिए। (Discuss Hobbes's theory of Social Contract.)

अथवा

प्राकृतिक अवस्था एवं सामाजिक संविदा पर हॉब्स के विचारों का विवेचन कीजिए। (Discuss Hobbe's views on the state of nature and Social contract.)

उत्तर- मानव की सदैव यह जानने की इच्छा रही है कि राज्य नामक संस्था की उत्पत्ति कैसी हुई। इस प्रश्न का उत्तर समय-समय पर विभिन्न राजनीतिक विचारकों ने देने का प्रयास किया है। इसीलिए राज्य की उत्पत्ति के विषय में हमें अनेक सिद्धान्त पढ़ने को मिलते हैं। इनमें से एक प्रमुख सिद्धान्त है- सामाजिक समझौते का सिद्धान्त, जिसके प्रतिपादकों में से थॉमस हॉब्स भी एक है। उसकी मान्यता है कि राज्य की उत्पत्ति सामाजिक समझौते से हुई है। वह कहता है कि राज्य की उत्पत्ति से पूर्व की 'प्राकृतिक अवस्था' से निजात पाने के लिए व्यक्तियों ने परस्पर मिलकर एक समझौता किया और इस समझौते के फलस्वरूप राज्य की उत्पत्ति हुई। हॉब्स ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अपनी पुस्तक 'लेवियाथन' (Leviathan) में किया है। उसके इस सिद्धान्त की व्याख्या निम्नलिखित शीषर्को के माध्यम से की जा सकती है-

1. मानव स्वभाव (Human Nature)-हॉब्स सामाजिक समझौते के सिद्धान्त का प्रारम्भ मानव स्वभाव के विश्लेषण से करता है। भौतिकवाद का अनुसरण करते हुए वह मनुष्य की ज्ञान-प्राप्ति और कल्पना करने की प्रक्रिया को भौतिक एवं यान्त्रिक मानता है। उसके मतानुसार मनुष्य में दो प्रकार की गतियाँ देखने को मिलती हैं-**अनैच्छिक (Involuntary) गतियाँ, जैसे-सांस लेना तथा ऐच्छिक गतियाँ (Voluntary), जैसे-चलना-फिरना, बोलना आदि।** अपनी कल्पना-शक्ति से मनुष्य प्रयास करता है और यही सब ऐच्छिक क्रियाओं का मूल स्रोत है। जब यह प्रयास किसी पदार्थ की ओर होता है, तो उसे हम क्षुधा (Appetite) या अभिलाषा (Desire) कहते हैं और जब यह प्रयास पदार्थ से दूर हटने का होता है, तो इसे द्वेष या घृणा कहते हैं। इस प्रकार अभीष्ट पदार्थ की प्राप्ति के लिए उसकी दिशा में बढ़ना राग और अनभीष्ट पदार्थों से दूर हटना द्वेष है। उसके मतानुसार मनुष्य की सुख-दुःख, आशा-निराशा, भय, साहस और क्रोध आदि सभी मनोभावनाएँ और वासनाएँ इसी राग-द्वेष के कारण होती हैं।

हॉब्स के अनुसार भलाई-बुराई का विचार भी हमारी गति की दिशा से तय होता है, क्योंकि स्वयं में न तो कोई वस्तु अच्छी होती है और न ही बुरी। (जब मनुष्य किसी पदार्थ की ओर अभिलाषा से बढ़ता है, तो यह अच्छा होता है और जब द्वेष से उससे दूर हटता है, तो उसे बुरा माना जाता है। मनुष्य आनन्द (Felicity) प्राप्त करना चाहता है। वांछित वस्तुओं को प्राप्त करने में सफलता ही आनन्द है। मानव जिन साधनों से अपनी इच्छाएँ पूर्ण करते हुए आनन्द प्राप्त करता है, उनको शक्ति (Power) कहते हैं। यह शक्ति कई प्रकार की होती है, जैसे शारीरिक और मानसिक शक्ति। हॉब्स की धारणा हैं कि प्रकृति ने सभी मनुष्यों को समान बनाया है। शारीरिक और मानसिक शक्तियों के संयोग से समानता के इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है। कोई व्यक्ति शारीरिक शक्ति के आधार पर दूसरे व्यक्ति से निर्बल हो सकता है, किन्तु वह मानसिक शक्ति के आधार पर दूसरे व्यक्ति से बलवान हो सकता है। हॉब्स का मानना है कि इस समानता के कारण मनुष्यों में संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है और वे एक-दूसरे को हराने और नष्ट करने के प्रयास करते हैं। उसके मतानुसार मनुष्य स्वभाव से स्वार्थी और अधिक-से-अधिक शक्ति प्राप्त करना चाहता है। मनुष्यों में तीन कारणों से संघर्ष चलता रहता है। ये तीन कारण है-प्रतिद्वन्द्वता (Competition), भय या अविश्वास (Diffidence) और कीर्ति या सम्मान (Glory)। पहले कारण से अधिक-से-अधिक प्राप्त करने के लिए, दूसरे कारण से सुरक्षा के लिए और तीसरे कारण से सम्मान के लिए संघर्ष होता है। यद्यपि मनुष्य शान्ति चाहता है, किन्तु उसे सदैव दूसरे से भय लगा रहता है। वह अपनी सम्पत्ति और अधिकार बढ़ाना चाहता है; इसीलिए वह दूसरे मनुष्यों के साथ लगातार संघर्ष में लिप्त रहता है।

2. प्राकृतिक अवस्था (State of Nature)-प्राकृतिक अवस्था से हॉब्स का अभिप्राय राज्य की उत्पत्ति से पूर्व की उस

अवस्था से है, जिसमें न कोई सत्ता थी और न ही कानून, जिससे कि मनुष्य को नियन्त्रित किया जा सके। मनुष्य में प्रतिद्वन्द्वता, भय और कीर्ति पाने की अभिलाषा सतत संघर्ष उत्पन्न करती है। जब दो व्यक्ति एक ही वस्तु को पाने का प्रयास करते हैं, तो उनमें प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हो जाती है। जब एक व्यक्ति इस आशंका से ग्रसित होता है कि दूसरे की शक्ति उससे अधिक न हो जाए, तो उत्तके अन्दर भय का जन्म होता है। मनुष्य की यह कामना भी सर्वथा स्वाभाविक है कि दूसरे व्यक्ति उसकी प्रशंसा करें और उसे अपने से ऊँचा समझें। व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध प्रतिस्पर्धा, भय और कीर्ति की कामना द्वारा निर्धारित होते हैं, इसी कारण उनमें संघर्ष प्रारम्भ होता है (हॉब्स कहता है कि प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य पशुओं की तरह एक-दूसरे से लड़ते-झगड़ते रहते थे। अतः यह अवस्था निरन्तर युद्ध की अवस्था थी। उसके मतानुसार इसमें प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक अन्य व्यक्ति का शत्रु होता था। हॉब्स के शब्दों में, यह 'सभी की सभी के विरुद्ध लड़ाई' की अवस्था थी। इसमें प्रत्येक मनुष्य स्वयं को असुरक्षित अनुभव करता था, क्योंकि उसे केवल अपनी ही शक्ति पर भरोसा होता था।

हॉब्स ने राज्य से पूर्व की इस अवस्था का वर्णन करते हुए लिखा है, "प्राकृतिक अवस्था युद्ध की अवस्था थी, इसमें सभी का सभी के विरुद्ध युद्ध था; इस अवस्था में कुछ भी अन्यायपूर्ण नहीं था तथा शक्ति और घोखा दो इसके प्रमुख गुण (लक्षण) वे।" उसके मतानुसार इस अवस्था में मनुष्य के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात थी-अपने जीवन को सुरक्षित रखना। इस अवस्था में दो सिद्धान्त व्यावहार में अपनाए जाते थे- "मार डालो, जिसको तुम मार सकते हो और छीन लो, जो तुम छीन सकते हो।" इस अवस्था में किसी उद्योग या कला-कौशल का विकास नहीं था, क्योंकि मनुष्य को यह भरोसा नहीं था कि वह इससे प्राप्त होने वाले लाभ का उपभोग कर सकेगा। इस अवस्था में किसी प्रकार की संस्कृति, सभ्यता, भवन-निर्माण, ज्ञान-विज्ञान तथा कला-साहित्य का विकास नहीं था।

हॉब्स के अनुसार प्राकृतिक अवस्था में, "मनुष्य का जीवन, एकांकी, निर्धन, कुत्सित, पशुतुल्य तथा क्षणिक था।"

हॉब्स ने निरन्तर युद्ध एवं संघर्ष वाली राज्य, से पूर्व की इस प्राकृतिक अवस्था की कई विशेषताओं का उल्लेख किया है, जैसे-

(i) इस अवस्था में नैतिकता का सर्वथा अभाव था। इसमें मनुष्य को अच्छे-बुरे और सत्-असत् का कोई बोध ही न था और वह अपनी मानसिक भावनाओं से प्रेरित होकर ही कार्य करता था। इस अवस्था में हिंसा और हत्या भी उचित समझे जाते थे। इस अवस्था में नैतिकता की कसौटियाँ या मापदण्ड बिल्कुल नहीं थे, इसीलिए कोई भी कार्य नैतिक या अनैतिक नहीं समझा जाता था।

(ii) इस अवस्था में न्याय-अन्याय के विचार का अभाव था। इस विषय में हॉब्स तर्क देता है कि जब समाज में शासन करने वाली कोई सत्ता नहीं होती, तो समाज में कानून भी नहीं होते, क्योंकि कानून शासक का आदेश होता है और जब समाज में कानून नहीं होता, तो न्याय या अन्याय का विचार भी नहीं होता, क्योंकि उन्हीं बातों को न्यायपूर्ण (Just) माना जाता है, जो कानून पर आधारित होती हैं और जो बातें कानून के विरुद्ध होती हैं, उन्हें न्यायपूर्ण (Unjust) माना जाता है।

(iii) इस अवस्था में व्यक्तिगत सम्पत्ति का अभाव था, क्योंकि जहाँ समाज में निरन्तर युद्ध चलता रहता हो, वहाँ किसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति हो ही नहीं सकती, क्योंकि जब तक कोई व्यक्ति शक्ति-सम्पन्न है, तब तक ही वह वस्तुओं पर अपना अधिकार बनाए रख सकता है, शक्ति-विहीन होने पर उसकी सम्पत्ति शक्तिशाली व्यक्ति उससे छीन सकता है।

(iv) इस अवस्था में कुछ प्राकृतिक अधिकार और प्राकृतिक कानूनों का अस्तित्त्व था। प्राकृतिक अधिकार से उसका अभिप्रायः अपने जीवन को सुरक्षित रखने के लिए दूसरे को लूटने, पीटने या जान से मार डालने की स्वतन्त्रता से है। इस अवस्था में अपनी सुरक्षा हेतु व्यक्ति बुद्धि और विवेक द्वारा कुछ नियम बनाते हैं। हॉब्स इन नियमों को 'प्राकृतिक नियम' कहकर पुकारता है। वह ऐसे 19 नियमों का उल्लेख करता है, जो प्राकृतिक अवस्था में विद्यमान् थे।

हॉब्स ऐसी प्राकृतिक अवस्था के अस्तित्त्व की किसी ऐतिहासिक प्रमाण से पुष्टि तो नहीं करता है, लेकिन इसके समर्थन में वह दैनिक जीवन-सम्बन्धी अनेक तथ्य प्रस्तुत करता है, जिनके आधार पर इसके विषय में अनुमान लगाया जा सकता है, जैसे- प्रथम, जब व्यक्ति यात्रा पर निकलता है, तो आक्रमण की सम्भावना को ध्यान में रखते हुए वह हथियार लेकर चलता है। इसी प्रकार व्यक्ति घर के दरवाज़े बन्द करके सोता है और सन्दूक पर ताला लगाता है। द्वितीय, अमेरिका के रेड इण्डियनों में पायी

जाने वाली स्थिति है। तृतीय, गृह-युद्ध के समय सभ्य राज्यों के निवासी भी एक-दूसरे के प्रति बर्बरतापूर्ण व्यावहार करते हैं। चतुर्थ, वर्तमान राज्यों का एक-दूसरे के प्रति व्यवहार, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक राज्य अपने शत्रु के विरुद्ध सेनाएँ, हथियार व दुर्ग तैयार करता है।

3. सामाजिक समझौता (Social Contract)-हॉब्स के अनुसार प्राकृतिक अवस्था में निरन्तर जारी रहने वाले युद्ध की स्थिति से तंग आकर व्यक्तियों ने अपने विवेक के अनुसार एक शक्तिशाली सत्ता की स्थापना करने की सोची, जिससे कि इस अवस्था से छुटकारा मिल जाए और उनका जीवन भी सुरक्षित हो जाए। ऐसी शक्तिशाली सत्ता की स्थापना के लिए मनुष्य मिलकर एक समझौता करते हैं। इसके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति हर दूसरे व्यक्ति से समझौता करता है। **हॉब्स के शब्दों में,** प्रत्येक व्यक्ति इस आशय की **शपथ** लेता है, **"मैं इस व्यक्ति को या व्यक्ति-समूह को इस शर्त पर अपना अधिकार देता हूँ कि मैं स्वयं अपने ऊपर शासन करने के अधिकार का परित्याग करता हूँ कि तुम भी अपने इस अधिकार को इसी प्रकार इस व्यक्ति को दोगे और अपने स्व-शासन के अधिकार को छोड़ दोगे।"** हॉब्स के अनुसार ऐसा करने पर सारा जन-समुदाय एक व्यक्ति के रूप में संयुक्त हो जाता है। इसे ही राज्य (Commonwealth) कहा जाता है और यही वह नश्वर देवता (Mortal God) या 'लेवियाथन' है, जो अनाशवान ईश्वर के बाद मनुष्य को शान्ति और सुरक्षा प्रदान करता है। यह लेवियाथन प्राकृतिक अवस्था की अराजकता को, राज्य-युक्त सभ्यता से पृथक् करता है। इसके प्रादुर्भाव से पहले न राज्य था और न समाज, क्योंकि इसके बाद ही इन दोनों का जन्म हुआ। राज्य के जन्म के बाद ही ज्ञान, संस्कृति, कला, साहित्य, व्यापार और व्यवसाय का आरम्भ हुआ और इसी के साथ अच्छे बुरे, सत्-असत् और न्याय-अन्याय की अवधारणाएँ विकसित हुई। इस लेविवाथन रूपी राज्य में सभी व्यक्तियों के अधिकार समाहित हैं और इसी को समप्रभुता सम्पन्न शासक या सम्प्रभु कहा जाता है। हॉब्स के अनुसार इसे सर्वोच्च अधिकार हैं और बाकी सभी व्यक्ति इसके दास हैं।

विशेषताएँ (Features): हॉब्स द्वारा वर्णित सामाजिक समझौते की विशेषताएँ निम्न प्रकार से हैं-

1. समझौता विवेक का परिणाम (Contract is a result of reason): हॉब्स का कहना है कि प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य का जीवन सुरक्षित नहीं था क्योंकि उसके ऊपर किसी प्रकार का कोई नियन्त्रण नहीं था और न ही किसी प्रकार के कानून थे। व्यक्ति अपनी सुरक्षा और स्वार्थों के लिए व्यक्ति की हत्या कर देता था। इस प्रकार से व्यक्तियों का विवेक जागृत हुआ और उन्होंने अपने जीवन की सुरक्षा के लिए एक सामाजिक समझौता किया।

2. समझौते की राजनैतिक और सामाजिक प्रकृति (Social and political nature of contract) : हॉब्स का कहना है कि यह सामाजिक समझौता केवल सामाजिक ही नहीं अपितु राजनैतिक भी था। व्यक्तियों ने आपस में जो समझौता किया उससे समाज, राज्य और सरकार की स्थापना हुई। इससे पहले व्यक्ति सामाजिक प्राणी नहीं था और प्राकृतिक अवस्था में अकेला रहता था। समाज का निर्माण समझौते की सामाजिक प्रकृति तथा सरकार और राज्य का निर्माण समझौते की राजनैतिक प्रकृति का सूचक है।

3. एकपक्षीय समझौता (One sided contract) — हॉब्स ने जिस सामाजिक समझौते का वर्णन किया और जिसके परिणामस्वरूप राज्य की उत्पत्ति हुई है वह समझौता एक पक्षीय था। इस समझौते को व्यक्तियों ने आपस में ही किया था और इसमें शासक शामिल नहीं था। अतः समझौते के परिणामस्वरूप अधिकारों का त्याग केवल व्यक्तियों ने ही किया। शासक के पास उसके अधिकार यथावत् बने रहे क्योंकि वह समझौते का भाग नहीं था।

4. सम्प्रभु की असीमित शक्ति (Unlimited power of sovereign): हॉब्स ने जिस सामाजिक समझौते का वर्णन किया है उसके अन्तर्गत उसने सम्प्रभु या शासक को शामिल न करके प्रत्येक प्रकार के प्रतिबन्धों से मुक्त कर दिया है। उसने सम्प्रभु की शक्ति पर किसी प्रकार का कोई अंकुश नहीं लगाया है। उसने केवल सम्प्रभु से यही अपेक्षा की है कि वह नागरिकों के जीवन की सुरक्षा करे और इसके बदले में उनके सम्पूर्ण अधिकारों पर उसका नियन्त्रण हो जाता है। हरमन का कथन है- "हॉब्स का सम्प्रभु बोदिन के सम्प्रभु की अपेक्षा कहीं अधिक शक्ति से युक्त है।"

5. अल्पसंख्यकों को कोई अधिकार नहीं (Minority has no right): हॉब्स का कहना है कि सामाजिक समझौते के परिणामस्वरूप जिस राज्य की स्थापना की गई है उसमें उन व्यक्तियों को भी कोई अधिकार नहीं है जो अल्पसंख्यक हैं और

समझौते में जो शामिल नहीं हुए। कहना है कि यह समझौता बहुसंख्यकों के द्वारा किया गया है और सभी पर लागू होता है। प्रकार से अल्पसंख्यकों को भी हॉब्स ने कोई अधिकार प्रदान नहीं किए हैं।

6. समझौता स्थाई है (Contract is permanent): हॉब्स का कहना है कि प्राकृतिक अवस्था में जो समझौता किया गया और जिसके द्वारा राज्य की स्थापना की गई। उस समझौते को तोडने का अधिकार किसी को नहीं है। हॉब्स का तर्क है कि समझौते को तोड़ने का अभिप्राय है कि प्राकृतिक अवस्था में वापिस चला जाए। प्राकृतिक अवस्था क्योंकि युद्ध की अवस्था है इसमें व्यक्ति की जान को हमेशा खतरा रहता है। अतः प्राकृतिक अवस्था से अच्छी कोई अवस्था नहीं हो सकती है। उसका कहना है कि समझौते के आधार पर व्यक्तियों को राज्य और शासक में परिवर्तन करने का भी अधिकार नहीं है क्योंकि इसमें राज्य का अस्तित्व समाज हो जाएगा।

7. कानून सम्प्रभु का आदेश है (Law is the command of sovereign): हॉब्स का कहना है कि कानून वही है जो प्रभुसत्ताधारी कहता है क्योंकि सम्प्रभु के पास सभी के अधिकार है औ वह जो भी आदेश देता है तो उसके पीछे समझौते की शर्त की कानूनी मान्यता है। अ कानून सम्प्रभु के आदेश हैं और नागरिकों द्वारा उसके आदेशों का पालन किया जाना चाहिए

8. निरंकुश राजतंत्र का समर्थन (Support of Absolute Monarchy): हॉब्स के राज्य की उत्पत्ति के सामाजिक समझौते के सिद्धान्त का उद्देश्य अपने समय में फ्रांस और इंग्लैण्ड में स्थापित राजतंत्र का समर्थन करना था। जब उसने 'लेवियाथन' लिखी उस समय वह फ्रांस में था और इंग्लैण्ड का राजपरिवार भी फ्रांस में था अतः वह उस निरंकुश राजतंत्र को अपने सिद्धान्त के माध्यम से औचित्य प्रदान करना चाहता था। उसके समझौते में नागरिकों के सम्पूर्ण अधिकार सम्प्रभु के पास होना और सम्प्रभु पर किसी प्रकार का नियन्त्रण न होना, यहीं प्रमाणित करता है कि उसका उद्देश्य निरंकुश राजतंत्र का समर्थन करना था।

इस प्रकार से कहा जा सकता है कि हॉब्स ने राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अपने समय में स्थापित दैवीय सिद्धान्त का विरोध करते हुए यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि राज्य की उत्पत्ति में लोगों की राजनैतिक चेतना, सुरक्षा की भावना आदि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

आलोचना (Criticism): राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हाव्स ने एक नवीन दृष्टिकोण अवश्य दिया है। लेकिन बहुत सी ऐसी बातें हैं जिसमें हॉब्स ने वैज्ञानिकता और इतिहास का सहारा न लेकर अपने पक्षपात और पूर्वाग्रहों से कार्य किया है। हरमन का कथन है- "हॉब्स का समझौता किसी भी दृष्टिकोण से क्राप्ति का औचित्य प्रमाणित नहीं करता तया उसका स्वभाव ऐसा है जिसमें प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक अन्य मनुष्य से अपने प्राकृतिक अधिकारों का समर्पण करने तथा उन अधिकारों की रक्षा करने की शान्ति एक प्रभुसत्ता सम्पन्न शक्ति को प्रदान कर देने पर सहमत हो जाता है।"

इस कारण से उसके सामाजिक समझौते के सिद्धान्त की निम्न आधारों पर आलोचना की जाती है-

1. मानव प्रकृति के सम्बन्ध में गलत विचार (Views about human nature are wrong): हॉब्स की राज्य की उत्पत्ति संबंधी धारणा उसके मानव स्वभाव के विचारों पर आधारित है। उसने मानव प्रकृति को स्वार्थी और हिंसात्मक कहा है। हॉब्स का यह कथन ठीक नहीं है। हिंसात्मक प्रवृत्ति का व्यक्ति अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता। वर्षों से मानव इस संसार में प्राकृतिक अवस्था में रहता आया है और यदि वह हिंसात्मक होता तो राज्य के निर्माण से पूर्व प्राकृतिक अवस्था में ही नष्ट हो जाता। मनुष्य हिंसा का सहारा अवश्य लेता है लेकिन उसकी प्रवृत्ति हिंसात्मक नहीं है। हॉब्स ने मानव का फेवल बुरा पक्ष ही वर्णित किया है।

2. मनुष्य असमाजिक नहीं है (Man is not unsocial): हॉब्स का कथन है कि मनुष्य स्वभाव से एक सामाजिक प्राणी नहीं है। उसके स्वार्थ के कारण वह प्राकृतिक अवस्था में अकेला रहता है। बास्तविकता ठीक इसके विपरीत है। मनुष्य कभी अकेला नहीं रहा है। अकेला रहकर वह अपनी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता। उसकी भौतिक और शारीरिक आवश्यकताओं ने उसे विपरीत लिंग के प्रति आकर्षित किया और इससे परिवार का निर्माण हुआ। उसकी आर्थिक आवश्यकताओं ने उसे सामाजिक बनाया और समाज का निर्माण हुआ। अतः स्पष्ट है कि मनुष्य अकेला नहीं रह सकता और अरस्तू का कथन ठीक ही है कि मनुष्य स्वभाव से एक सामाजिक प्राणी है।

3. अतार्किक सिद्धान्त (Illogical Theory): हॉब्स का सामाजिक समझौते का सिद्धान्त तर्क के आधार पर भी उचित नहीं है। उसने अपने विचारों में तर्क की अपेक्षा पूर्वाग्रह से काम लिया है। इसका प्रभाव यह पड़ा है कि उसके विचारों में हमें कई स्थानों पर तर्क की अपेक्षा विरोधाभास देखने को मिलता है। यह कहता है कि प्राकृतिक अवस्था युद्ध की अवस्था थी जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वार्थों के लिए दूसरे से युद्धरत था और असीमित स्वतन्त्रता का उपयोग करता था। दूसरी तरफ यह कहता है कि शान्ति की चाह में अपने जीवन की सुरक्षा के लिए उसने एक सामाजिक समझता किया जिससे युद्ध की प्राकृतिक अवस्था का अन्त हो गया और शान्तिपूर्ण राज्य की स्थापना हुई। व्यक्ति ने अपने सम्पूर्ण अधिकार दूसरे व्यक्ति या समूह को प्रदान कर दिये। तर्क के आधार पर यह संभव नहीं है कि एक ही क्षण में मानव प्रकृति हिंसात्मक से शान्तिप्रिय बन जाए और न ही यह संभव है कि असीमित अधिकारों का प्रयोग करने वाला मानव एक ही पल में अपने सम्पूर्ण अधिकारों को छोड़ दे।

4. अधिकार केवल राज्य में ही संभव (Rights are possible only in state): हॉब्स ने प्राकृतिक अवस्था में असीमित अधिकारों के मानव द्वारा प्रयोग की बात कही है। लेकिन पहले तो यह कि अधिकार असीमित नहीं होते। अधिकार और कर्तव्य साथ-साथ चलते हैं। जब एक व्यक्ति अपना कर्तव्य निभाता है तभी दूसरा अपने अधिकारों का उपयोग करता है दूसरे यह कि अधिकार केवल राज्य में ही संभव होते हैं, क्योंकि अधिकारों का जो हम अर्थ लेते हैं उसमें स्पष्ट लिखा गया है कि अधिकार सामाजिक जीवन की सुविधाएँ हैं जिन्हें एक राज्य अपने नागरिकों के व्यक्तित्व के विकास के लिए लागू करता है। अतः स्पष्ट है कि नागरिकों को अधिकार प्राप्त नहीं थे। यह कहा जा सकता है कि उन पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था क्योंकि राज्य का अस्तित्व नहीं था।

5. विद्रोह का सीमित अधिकार (Limited right of revolt): हॉंस्स ने राज्य की उत्पत्ति के अपने सामाजिक समझौते के अन्तर्गत अराजकता की वकालत की है। उसे यथपि समझौता तोड़ने का अधिकार नहीं दिया है फिर भी उसने सीमित रूप में विद्रोह का अधिकार प्रदान किया है। उसका कहना है कि अगर सम्प्रभु अपने नागरिकों के जीवन की सुरक्षा नहीं कर सकता तो नागरिकों को उसे हटाने और विद्रोह करने का अधिकार है। इस प्रकार का अधिकार स्थायित्व की अपेक्षा अराजकता को ही जन्म देगा।

6. राज्य और सरकार में अन्तर नहीं (No difference between state and Government): हॉब्स ने राज्य और सरकार में कोई अन्तर नहीं किया है। उसका कहना है कि अगर लोग अनावश्यक रूप से सम्प्रभु का विरोध करते हैं तो राज्य का अन्त हो जाएगा और मनुष्य प्राकृतिक अवस्था में वापिस चला जाएगा। किसी भी सरकार के परिवर्तन से राज्य का अन्त नहीं होता है। राज्य सरकार का अंग नही है अपितु सरकार राज्य का एक अंग है और दोनों अलग-अलग अवधारणाएं हैं।

7. प्रभुसत्ता असीमित नहीं (Sovereignity is not unlimited): हॉब्स ने सम्प्रभु की शक्ति को असीमित मानकर उस पर किसी प्रकार के अंकुश लगाने से इन्कार कर दिया है। आज के आधुनिक युग में प्रभुसत्ता लोगों के पास संविधान के अनुरूप होती है। जिसका प्रयोग सरकार द्वारा जनता की भलाई के लिए किया जाता है। प्रभुसत्ता का स्वामी सरकार नहीं अपितु जनता होती है और उसका व्यापक अंकुश सरकार पर रहता है।

8. राज्य का आधार शक्ति नहीं इच्छा है (Will not force is the basis of the state): हॉब्स के सामाजिक समझौते में शक्ति को अधिक महत्व प्रदान किया गया है। उसने सम्प्रभु को सबसे शक्तिशाली बनाकर उसे सम्पूर्ण अधिकार प्रदान किए हैं। लेकिन राज्य का आधार शक्ति नहीं इच्छा है। लोग किसी राज्य में इसलिए नहीं रहते कि उन्हें भय होता है बल्कि वे इसलिए रहते हैं कि राज्य उनकी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। वे अपनी इच्छा से उसमें रहते हैं। अतः राज्य का आधार शक्ति नहीं बल्कि लोगों की इच्छा है।

9. पक्षपाती सिद्धान्त (Prejudiced theory): हॉब्स का सिद्धान्त पूर्वाग्रह से ग्रसित है। उसका एकमात्र उद्देश्य अपने समय में निरंकुश राजतंत्र की स्थापना करना था। इसलिए उसने कहा कि राज्य में ही व्यक्ति का जीवन सुरक्षित रह सकता है और क्योंकि मानवीय प्रकृति हिंसात्मक है। अतः उस पर नियन्त्रण के लिए सम्प्रभु का शक्तिशाली और निरंकुश होना आवश्यक है। मरे का कचन है- "हॉब्स की आत्मकथा लिखने वाले को केवल एक ही समर्थक मिल सका जबकि उसके दुश्मन अनेक थे।"

10. समझौते का ऐतिहासिक आधार नहीं (No historical evidence of contract) — हॉब्स ने जिस सामाजिक समझौते के माध्यम से राज्य की उत्पत्ति की बात कही है। इस प्रकार के सामाजिक समझौते का हमें इतिहास में कहीं कोई

प्रमाण देखने को नहीं मिलता। वास्तविकता यही है कि इस प्रकार के सामाजिक समझौते के द्वारा राज्य की उत्पत्ति नहीं हुई बल्कि राज्य एक विकास का परिणाम है। इसका निर्माण एक पल या क्षण में नहीं हुआ है बल्कि इसे अपना वर्तमान स्वरूप प्राप्त करने में हजारों वर्ष लगे हैं।

हाब्स के राज्य /संप्रभु की शक्तियां

सम्प्रभु/राज्य की शक्तियाँ और कार्य

(Powers and Functions of Sovereign/state)

1. कानूनों के निर्माण, व्याख्या और लागू करना (To make, implement and explain laws) : हॉब्स ने प्रभुसत्ता को अविभाज्य मानते हुए सम्प्रभु को कानून के सन्दर्भ में सभी शक्तियां प्रदान की हैं। उसने उसे वैधानिक, कार्यपालिका और न्यायपालिका, तीनों की शक्तियां दी हैं। उसका कहना है कि कानून निर्माण का अधिकार केवल सम्प्रभु का है और इस सन्दर्भ में उसके आदेश ही कानून हैं। उसे कानून को लागू करने का भी अधिकार दिया है। अगर किसी कानून को लेकर कोई विरोधाभास है और यदि कोई कानून का उल्लंघन करता है तो उस कानून की व्याख्या करना और कानून तोड़ने वाले को दण्ड देने का भी अधिकार सम्प्रभु के पास ही है।

2. उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति (Appointment of high officials) : राज्य के शासनों और प्रशासन को चलाने के लिए हॉब्स ने सभी अधिकार सम्प्रभु को दिये हैं। एक व्यक्ति पाकि समूह किसी भी राज्य के शासन या प्रशासन को नहीं चला सकता। अतः उसे राज्य के विभिन्न कार्यों के लिए उच्च अधिकारियों की नियुक्ति करनी पड़ती है। यह नियुक्ति का अधिकार भी हॉब्स ने सम्प्रभु को ही दिया है।

3. शान्ति की स्थापना (Establishment of peace): हॉब्स ने जहां एक ओर सम्प्रभु को असीमित अधिकार प्रदान किए हैं तो दूसरी ओर उसने सम्प्रभु का उत्तरदायित्व भी निश्चित किया है। उसका कहना है कि व्यक्तियों ने राज्य की स्थापना शान्ति के लिए की है। क्योंकि प्राकृतिक अवस्था युद्ध की अवस्था थी और उसमें उनके जीवन को खतरा था। केवल शान्ति की स्थापना होने पर ही व्यक्तियों का जीवन सुरक्षित होता है।

4. युद्ध और शान्ति की घोषणा (Declaration of peace and war): हॉब्स ने राज्य में युद्ध और शान्ति की घोषणा का अधिकार भी सम्प्रभु को ही दिया है। उसका कहना है कि राज्य किसी दूसरे राज्य के साथ युद्ध करेगा या शान्ति कायम रखेगा इसका अन्तिम निर्णय केवल सम्प्रभु के द्वारा ही किया जाना चाहिए।

5. कर लगाना (To impose tax)— राज्य के कार्यों को सम्पन्न कराने के लिए धन की आवश्यकता होती है। राज्य द्वारा यह धन करों के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। इस सन्दर्भ में कर लगाने का अधिकार वह सम्प्रभु को ही देता है। यहां यह बात भी ध्यान रखनी चाहिए कि इस सन्दर्भ में उसने इंग्लैंड के सम्राट का समर्थन अप्रत्यक्ष रूप से किया है। उसके समय में संसद और सम्राट के मध्य सर्वोच्चता को लेकर संघर्ष चल रहा था और उसमें सबसे बड़ा मुद्दा राजकोष पर नियन्त्रण और कर लगाने से सम्बन्धित था। संसद यह अधिकार अपने पास लेना चाहती थी और सम्राट इसे छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। इस प्रकार से हॉब्स ने अप्रत्यक्ष रूप से सम्राट का ही समर्थन किया है और सम्प्रभु को कर लगाने का अधिकार दिया है।

6. सम्पत्ति सम्बन्धी कानून (Laws regarding property): हॉब्स ने न केवल कर लगाने का अधिकार सम्प्रभु को दिया है बल्कि सम्पत्ति सम्बन्धी कानून भी बनाने का अधिकार उसने सम्प्रभु को ही प्रदान किया है। उसका कहना है कि लोगों ने सामाजिक समझौते के माध्यम से अपने सम्पूर्ण अधिकार सम्प्रभु को सौंप दिये हैं और सम्पत्ति भी उसमें ही शामिल है।

7. लोगों के अधिकार सीमित करना (To limit people's right): हॉब्स ने यद्यपि अपने सामाजिक समझौते के माध्यम से

लोगों को सम्पूर्ण अधिकार सम्प्रभु को समर्पित करवा दिये हैं। लेकिन फिर भी उसने सम्प्रभु को यह अधिकार दिया है कि वह लोगों के अधिकारों को सीमित कर सकता है। लोगों ने राज्य में केवल अपने पास जीवन का अधिकार ही रखा था। इस से स्पष्ट होता है कि हॉब्स ने यह बात कहकर सम्प्रभु को उस उत्तरदायित्व से भी मुक्त कर दिया है कि उसे लोगों के जीवन की सुरक्षा करनी है।

8. चर्च पर नियन्त्रण (Control over church): हॉब्स ने मैक्यावली के समान ही दैवीय कानूनों के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया है। इस कारण से उसका कहना है कि चर्च पर भी सम्प्रभु का सम्पर्ण नियन्त्रण होना चाहिए। चर्च को राज्य के मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। हॉब्स ने इस प्रकार से पोप की सत्ता को चुनौती दी है।

इस प्रकार हाब्स का राज्य शक्तिशाली तथा निरंकुश है।